प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (बम्बई-राज्य)

पहली बार : ५,०००
अगस्त, १९५८
मूल्य : पचास नये पैसे
(आठ आना)

मुद्रक :
ओम्प्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल लिमिटेड,
वाराणसी (बनारस) ५३४८–१५

क्यों पढ़ें ?

प्यारे बच्चो,

महात्मा गांधी का नाम तुमने सुना होगा। उनका जन्म कब हुआ, कहाँ हुआ, उनका बचपन कैसे बीता, सत्य और अहिंसा उनके जीवन में कैसे आयी, कुसंगति का उन पर कैसा क्या असर हुआ, फिर वे कैसे सँभले, पढ़ने के लिए वे कैसे विलायत गये, लन्दन में किस तरह रहे और वकालत करने के लिए दक्षिण अफ्रिका कैसे गये—इन सब बातों की जानकारी तुम्हें शायद न होगी। लो पढ़ो, प्यारे बापू की यह कहानी तुम्हारे हाथ में है।

यह कहानी भारत से बहुत दूर फ्रांस देश में रहने-वाली एक बहन ने लिखी है। उसने अपने देश की फरासीसी भाषा में यह पुस्तक लिखी थी। पर उस भाषा में तुम उसे कैसे पढ़ पाते, इसलिए तुम्हारी हिन्दी भाषा में इसको लाने का काम किया है सरला बहन ने, जिन्होंने विदेश की होने पर भी वर्षों से भारत की सेवा में ही अपने को लगा रखा है।

बापू के बचपन और शिक्षण की इस सुन्दर कहानी से तुम बहुत सी बातें सीखकर अपने देश का गौरव बढ़ाओगे, ऐसा हमारा विश्वास है।

अनुक्रम

प्यारे बापू

[बचपन और शिक्षण]

बाल्यावस्था : १ :

बचपन का धार्मिक वातावरण

मोहनदास गांधी का जन्म २ अक्तूबर, सन् १८६९ को पोरबन्दर में हुआ था।

पोरबन्दर सौराष्ट्र में समुद्र के किनारे चूने से पुते हुअे मकानों का एक छोटा-सा शहर है। उस शहर में बहुत-से अमीर बनिये रहते हैं। वे बड़े आनन्द से अपना जीवन बिताते हैं। वहाँ हरिजनों के भी कुछ मुहल्ले हैं। वे बेचारे दिनभर काम करते हैं। उन्हें सबसे कठिन और सबसे खराब काम करना पड़ता है, लेकिन खाने को पेटभर भोजन तक नहीं मिलता।

"माँ, हमें भूख लगी है! माँ, हमें भूख लगी है!" हर रोज शाम के समय, सोते वक्त, छोटे-छोटे हरिजन बच्चे इस प्रकार रोते थे। उनकी माँ-बेचारी के पास कोई भी अैसी चीज नहीं थी, जो वह उन्हें खाने को दे सके। उनकी भूख की याद भुलाने के लिअे वह एक सुंदर

पुराना गाना गाया करती थी—बहुत मधुर और बहुत करुणाजनक !

हर बच्चे की तरह गांधीजी को भी अक्सर उस पहले दिन की याद आया करती थी, जब वे पहली बार अपने पाँवों के बल खड़े होकर चलने लगे थे। उस नन्हें दुबले-पतले शरीर के लिअे उनका सिर ज्यादा भारी था। इस कारण वे शराबी की तरह लड़खड़ाते हुअे आँगन के दरवाजे की तरफ़ गिरते-पड़ते गये।

आँगन की गरम हवा ने प्रेम से उनका स्वागत किया। गमलों में लगे बड़े-बड़े सुगंधित फूल उन्हें बड़े-बड़े भूतों की तरह लगे और उड़नेवाली छोटी तितलियाँ छोटे-छोटे देवताओं की तरह !

जब वे सिर उठाकर सूर्य की तरफ देखने लगे, तो उसकी तेज रोशनी से वे एकदम अंधे-से हो गये थे और डर के मारे सिसकने लगे थे। उन्हें अैसा मालूम हुआ था कि यह सुंदर-नया दृश्य अपनी धाया रंभा की कहानियों से भी ज्यादा रोचक है; और जब उनकी माँ उन्हें दुलार करने आयी थीं, तो वह उन्हें सबसे सुंदर और प्यारी लगी थीं।

उनकी माँ ने उन्हें बहुत पहले ही सूर्यदेव को नमस्कार करना सिखलाया था।

हर रोज सुबह उजाला होते ही वे अपने छोटे-छोटे

हाथ आकाश की ओर उठाकर, अपनी माताजी के पास चुपके से खड़े हो, तोते की तरह उस छोटे-से श्लोक को दुहराते थे, जो उनकी माँ धीरे-धीरे बोलती थीं।

उसी समय सारा भारतवर्ष आकाश की तरफ हाथ उठाकर इस तेजस्वी देवता को जगत् में प्रकाश फैलाने के लिये बुलाता है। चारों ओर से, मकानों में, मंदिरों में, खेतों में, सड़कों पर, घने जंगलों में, देश के सभी लोग प्रातःकाल के प्रकाश को नमस्कार करते हैं।

मोहन के पिता के अन्य सन्तानें भी थीं। उनकी तीन बहनें थीं, जिनकी शादी पहले हो चुकी थी। वे अपनी ससुराल में रहती थीं। उनका एक भाई उनसे काफी बड़ा था और दूसरा लगभग उन्हींके बराबर।

मोहन की माँ पुतली बाई अपने पति का बहुत आदर करती थीं। वे अक्सर उनके साहस और उनकी वफादारी की प्रशंसा किया करती थीं। सच्ची बात कहने पर मोहन के पिताजी को जेल की सजा भी भोगनी पड़ी थी। उनका देश-निकाला भी हुआ था। उनकी देश-भक्ति के कारण उनके प्राण तक संकट में पड़ गये थे। मोहन की माँ उनके सब सुख-दुःखों में भाग लेती थीं। वे कभी किसी बात की शिकायत न करती थीं, बल्कि अन्तःकरण से वे अपने पति पर गर्व करती थीं।

जब रोज सुबह वे मोहन को नहलातीं या नाश्ते के

लिअे दलिया और फल तैयार करतीं, तो अैसा लगता था कि वे उस समय भी अपने बच्चों के भविष्य की चिन्ता में लगी हैं।

वे अपने बच्चों को उनके पिताजी की तरह श्रेष्ठ, प्रतिष्ठित दीवान के रूप में देखना चाहती थीं। उसके मन में उनके प्रति अनेक मधुर भावनाअें उठती थीं।

पोरबन्दर के मकान में सब कमरों के दरवाजे आँगन की ओर खुलते थे। सुगंधित फूल, केले व ताड़ के पेड़ और एक छोटा-सा फौवारा; उनके लिअे यही दुनिया का पहला दृश्य था।

घर पर चारों तरफ से दूर-दूर के लोग उनके पिताजी की सलाह लेने आते थे। कमरे के बीच में सफेद धोती पहने मोहन के पिताजी हरअेक की बात बड़े ध्यान से सुनकर अपनी सलाह दिया करते थे।

मोहन के पिता करमचंद गांधी कोई विद्वान् न थे। उन्हें पाठशाला की शिक्षा बहुत कम मिली थी और इस वजह से उन्हें कभी-कभी काफी तकलीफ झेलनी पड़ती थी। लेकिन वे बहुत ही समझदार व्यक्ति थे और दुनिया के अनुभवों से उतना ही फायदा उठाना जानते थे, जितना ऊँची शिक्षा से लोग उठाते हैं। अगर किसीने पूछा होता कि सिकंदर कौन था या पेरिस कहाँ है, तो सम्भव है, वे सिर खुजलाते रह जाते। लेकिन यदि आप

किसी पेचीदा मामले में उनकी सलाह माँगते, तो वे फौरन उस मामले का सही हल सुझा देते।

करमचंद गांधी बहुत ही उदार थे। वे रुपये बचाकर नहीं रखते थे। जो कुछ वे कमाते थे, उसे दूसरों पर खर्च कर देते थे। उन्हें वेद, शास्त्र और पुराण पढ़ने का बड़ा शौक था। जब कभी बच्चों की माँ बीमार पड़ जातीं, तो वे खुद बच्चों को रामायण, महाभारत आदि पढ़कर सुनाया करते थे।

वे कहानियों को रोचक ढंग से सुनाना जानते थे। लेकिन मोहन की माँ अक्सर सबसे अद्भुत कहानियाँ सुनाया करती थीं।

मोहन के पिताजी भावुक होते हुये भी उग्र स्वभाव के थे। इसके विपरीत उनकी माँ बड़ी धीर और नम्र थीं। लेकिन उस नम्रता के भीतर दृढ़ इच्छा-शक्ति छिपी थी।

बचपन की रहन-सहन

मोहन का घर रईसों का-सा घर नहीं था। वे जमीन पर बैठकर खाना खाते थे। कभी-कभी उनकी माँ खाना थाली में न परोसकर केले के पत्ते पर खिलाती थीं। यह उन्हें सबसे अच्छा लगता था।

खाना खाने से पहले और खाना खाने के बाद सब

बच्चे हाथ-मुँह धोते। माँ उनके लिअे साबुन और पानी तैयार रखती थीं।

उनके सोने का कमरा साधु-संतों के सोने के कमरे की तरह सादा मालूम होता था। सोने के लिअे अेक चौकी, अध्ययन करने के लिअे कुर्सी-मेज और पानी पीने के लिअे अेक सुराही। इन चीजों के अलावा कोई अनावश्यक चीज कमरे में न थी। सभी कमरे साफ-सुथरे थे।

मोहन और उनके भाई अपनी माता से बहुत स्नेह करते थे। माँ सदा घर में सबसे पहले उजाला होने से भी पहले, उठा करती थीं। वह आधे घंटे तक मौन बैठकर प्रार्थना करती थीं। ज्यों ही बच्चे उठते, त्यों ही अपनी माँ की खोज में जाते। वे माँ को प्रणाम करते और वह बच्चों को प्यार से आशीष देतीं। नित्य-क्रिया के बाद वे बच्चों से ये वाक्य कहलवातीं: "मैं आजाद हूँ। मैं बहादुर हूँ। मैं हमेशा सच बोलूँगा।" वे उन्हें समझातीं कि बच्चो, इस प्रकार अपनी इन्द्रियों पर काबू रखना सीखो।

माँ की तपश्चर्या

जब मोहन केवल चार साल के थे, तभी उन्होंने यह कहना सीखा—"मैं किसीको हानि नहीं पहुँचाना चाहता। मैं सबकी भलाई चाहता हूँ।"

जब उनकी माँ छोटी थीं, तब सैकड़ों दूसरी बातों के साथ, जो छोटी लड़कियों को सीखनी पड़ती हैं, उन्होंने यह भी सीखा था कि बहुत शान्ति से बिना शोर-गुल किये चलना चाहिये। शायद ही बच्चों ने कभी कमरे में या आँगन में उनके पैरों की आवाज सुनी हो।

वे हमेशा हँसमुख रहती थीं और दिनभर काम में लगी रहती थीं। वे कभी थकती नहीं थीं। दरवाजे खोलते-लगाते समय भी उनकी आवाज नहीं सुनाई देती थी। साड़ी की धीमी फरफराहट से ही बच्चों को अपनी माँ का आभास होता था।

मोहन की माँ हिंदू-धर्म के अनुसार हमेशा खाना खाने से पहले बहुत देर तक प्रार्थना किया करती थीं। वे गरीबों पर बहुत प्रेम करती थीं। अपने हाथों से खाना बनाकर वे उन्हें देती थीं। वे अस्पताल में जाकर मरीजों की सेवा भी किया करती थीं। वे हर रोज मंदिर भी जाया करती थीं।

वे जब व्रत रखती थीं, तो धार्मिक कर्तव्य की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि उसमें उन्हें अपूर्व आनंद आता था। अधिक तपस्या करने के फलस्वरूप वे अक्सर बीमार पड़ जाती थीं। उन्हें सिर-दर्द होता और बेहोशी आ जाती थी। घबराकर मोहन के पिताजी उनसे अपना व्रत तोड़ने को कहते थे।

"तुम बीमार हो। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि बीमार पड़ने पर व्रत तोड़ना चाहिअे ?" वे उनकी यह बात पूरी होने से पहले ही कहतीं : "नहीं-नहीं, आप नहीं जानते। इससे मुझे फायदा होता है।" और वे अपना व्रत पूरा कर ही लेतीं।

करमचन्द गांधी जानते थे कि उनके कहने से मोहन की माँ अपना इरादा न बदलेंगी। वे मुस्कराते हुए चुप-चाप चले जाते। बहुधा मोहन की माँ बहुत कठिन तप साधतीं और वे उन व्रतों को बड़ी खुशी और भक्ति से निभाती थीं। उदाहरण के लिअे वे कभी-कभी अैसा व्रत लेती थीं कि जब तक सूर्य के दर्शन नहीं होंगे, तब तक खाना नहीं खाऊँगी। ये व्रत अधिकतर वे बरसात के दिनों में लेती थीं। इस मौसम में सूर्यदेव कभी-कभी कितने ही दिनों तक छिपे रहते हैं। चार महीने तक बादल घिरते रहते हैं और जोरों की बारिश होती है। कौन जानता है कि कब सूर्यदेव दर्शन दें ? बड़ी आशा से छोटे बच्चे घंटों आकाश की ओर देखते रहते। कब दिखलाई देगा वह सूर्यदेव ?

आखिर, कोई बादल फट जाता और सूर्यदेव की हलकी-हलकी किरणें दिखाई देने लगतीं। तब बच्चे अपनी माँ को बुलाने दौड़ते : "माँ, जल्दी आओ। सूर्य-देव को देखो।"

मुस्कराती हुई, अपनी सिलाई का काम नीचे रखती हुई माँ सूर्यदेव का दर्शन करने के लिये बच्चों के साथ आँगन में आती थीं। लेकिन उन्हें आने में अक्सर इतनी देर हो जाती कि सूर्यदेव तब तक छिप जाते।

तब बच्चे अपनी निराशा को न दबा पाते—"माँ, आप जल्दी-जल्दी क्यों नहीं आयीं? सचमुच सूर्यदेव निकले और हमने उन्हें अपनी आँखों से देखा।"

तब अपने छोटे हाथ से बच्चों के सिर को सहलाती हुई, वे शांति से मुस्कराती हुई कहतीं: "अच्छा बच्चो! कोई बात नहीं। सूर्यदेव के दर्शन फिर किसी समय हो जायेंगे। आज परमात्मा की इच्छा मुझे खाना खिलाने की नहीं है।"

मोहन की माँ बड़ी होशियार थीं। उनमें बड़ी व्याव-हारिक बुद्धि थी। उनके मित्र अक्सर उनकी बातों की कद्र करते थे।

शिक्षा-काल का आरंभ: साधु-संतों के संपर्क में

मोहन के पिताजी अपने बच्चों को बहुत अच्छी शिक्षा देना चाहते थे। वे रोज बड़ी जल्दी उन्हें पाठ-शाला के लिये रवाना करते थे। पाठशाला जाते समय वे बच्चों को अपने साथ ले जाकर फूल चढ़वाते थे। अपने हाथ में रखे फूलों को इतनी दूर रखते थे कि फूलों

की सुगंध सूँघी न जा सके, क्योंकि लोग कहते हैं कि सूँघने से फूल जूठे हो जाते हैं; फिर उनमें पवित्रता नहीं रह जाती।

चले मंदिर के लिये फूल तोड़ने,
मंद पवन चल रही है;
भ्रमर और पत्तियाँ सूर्य की पीली किरणों में
नाच रही हैं।

इस प्रकार गुनगुनाते हुये वे जल्दी-जल्दी जाते थे। मंदिर के ब्राह्मणों के हाथ में फूल देकर ये फिर पाठ-शाला की ओर चले जाते थे।

उस परिवार का सबसे छोटा लड़का मोहन बहुत होशियार न था। वह पाठशाला में सचमुच पढ़ने के लिये नहीं जाता था, बल्कि समय बिताने के लिये जाता था। अपने शिक्षकों की नकल करने में उसे अत्यंत आनंद आता था। लिखना-पढ़ना उसके लिये बहुत भाररूप होता था। लेकिन मंदिर में उसका जी कभी नहीं ऊबता था। रोज दोपहर में, लगभग तीन बजे, उसके मुहल्ले की सब स्त्रियाँ मंदिर में जमा होती थीं। वहाँ छाया में बैठकर वे गपशप करती थीं। आपस में एक-दूसरे को सारे दिन की घटनाएँ सुनाती थीं और हँसते-हँसते पूजा की घंटी के बजने का इंतजार करती थीं।

ठीक चार बजे पुजारी अपनी घंटी बजाते थे। फौरन

स्त्रियाँ चुप हो जाती थीं। स्त्रियाँ चुपचाप मंदिर में जाकर अपनी ठीक जगह पर बैठती थीं। मजदूर लोग भी इधर-उधर से आकर आराम से वहाँ बैठ जाते। थोड़ी देर तक ध्यान करने के बाद पुजारी अपने मधुर स्वर में रामायण आदि पढ़ने लगता था। सब उसके साथ-साथ धीमी-धीमी आवाज में गाते थे, क्योंकि श्लोक सबको याद रहते थे।

वीर पुरुषों की कथाएँ मोहन को बड़ी प्यारी लगती थीं। वे उन वीरों का सच्चे हृदय से सम्मान करते थे, जो अपनी हिम्मत से संसार की पूरी वृत्तियों पर विजय पाते हैं।

उन्हें मंदिर में आनेवाले भिखारियों और यात्रियों को पास से देखने का बड़ा शौक था। उन्हें लगता कि फटे चीथड़ों के भीतर बहुधा ज्ञान छिपा रहता है।

एक भिखारी की याद उन्हें अक्सर आती थी। वह बहुत लम्बे कद का था तथा उसका बदन धूप और वर्षा से काला और कड़ा हो गया था। लेकिन उसके मनोहर चेहरे और आचार-व्यवहार से उसके ऊँचे खानदान का पता चलता था। सारे शहर के लोगों ने इस रहस्य को समझ लिया था। उन भिखारी के-से कपड़ों के भीतर एक ऊँचे खानदान का पुत्र छिपा था, जिसने सर्वोत्तम ज्ञान पाने के लिये अपनी सारी सम्पत्ति छोड़ दी थी।

उस भिखारी की आवाज बड़ी ही मधुर थी। वह

जब अपने देश के बारे में सुंदर-सुंदर कविताऐं और गीत गाता था, तो मोहन बड़े ध्यान से सुनता था।

"सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक हम आगे बढ़ते जाते हैं।"

"हम भारत की स्वतंत्र संतान हैं, हम शक्तिमानों को धन, मान या बड़ाई की परवाह नहीं है।"

"जीवन में हमें रोटी, वस्त्र व धन मिले या न मिले, हमें क्या चिंता? हमारा हृदय तो प्रसन्न ही है।"

"समय चलती हुई हवा के समान है। भविष्य अधखिले गुलाब के समान है। कोई नहीं जानता कि उसको कौन तोड़ेगा?"

"स्वतंत्रता की लाठी पकड़े हुए हम निर्भय साधुओं का दल अेक देश से दूसरे देश में घूमता रहेगा।"

"चलते-चलते हम उस रात (मृत्यु) के द्वार पर पहुँच जाते हैं, जहाँ राजा और भिखारी, दोनों की यात्राओं का अंत हो जाता है।"

भिखारी की अैसी वीरताभरी कविताओं को सुनकर मोहन को कितनी खुशी और हिम्मत आती थी!

मोहन ने एक बहुत सुन्दर कहानी भी इस भिखारी से सुनी। अेक दिन सारे शहर के बच्चे उसके चारों ओर इकट्ठे होकर उससे पूछ रहे थे: "संत बनने के लिअे आदमी को क्या करना चाहिअे?"

संन्यासी ने उत्तर दिया : "एक बार एक बुद्धिमान् संत था, जो बहुत दान देता था। वह प्रार्थना भी करता था। लेकिन अेक रोज उनके जीवन की ज्योति बुझ गयी। वे मर गये।

तब उनकी आत्मा सीधी स्वर्ग पहुँची, परंतु वहाँ स्वर्ग का दरवाजा बंद मिला। परमात्मा अंदर बैठे थे। उनकी खटखटाहट सुनकर उन्होंने पूछा : "बाहर कौन है ?"

"परमात्मन्" मैं हूँ। आप स्वर्ग का द्वार खोलकर मुझे आने दीजिये।"

लेकिन परमात्मा ने उत्तर दिया : "तुम अभी स्वर्ग में नहीं आ सकते हो। भू-लोक को वापस जाओ और सर्वोत्तम ज्ञान खोजो। ज्ञान मिलने पर फिर आना।"

तो ये संत फिर भू-लोक में वापस आये और दुबारा जन्म लेकर उन्होंने बहुत दान-पुण्य किया। वे मंदिरों में जाते थे और जब उनके जीवन की अवधि पूरी हुई, तब उन्होंने समझा कि कम-से-कम अब मैं स्वर्ग में जाने लायक हो गया हूँ।

ईश्वर ने दुबारा उनसे पूछा : "बाहर कौन है ?"

"परमात्मन् , मैं हूँ ! खोलिये, आपका लड़का वापस आया है।"

लेकिन परमात्मा ने कहा : "तुम अभी भी स्वर्ग में

नहीं आ सकते हो। भू-लोक में वापस जाओ और सबसे उत्तम विद्या-ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञान हो जाने पर लौटकर आना।"

यह संत तीसरी बार भू-लोक में आया। वह अपने घर-बार, स्त्री-पुत्रों को छोड़कर वन में जाकर रहने लगा। वहाँ वर्षों तक तपस्या करके उसने उत्तम ज्ञान प्राप्त किया। अंत में ध्यान में परमात्मा की एकता और सर्व-व्यापकता का अनुभव किया।

वर्ष बीतते गये और अंत में उसके जीवन की ज्योति बुझने लगी। तब अपनी लाठी लेकर उसने फिर स्वर्ग में जाकर दरवाजा खटखटाया। भीतर से परमात्मा ने पूछा : "कौन है ?"

"आप ही हैं परमात्मन्! आप ही हैं ईश्वर !!" बूढ़े ने कहा।

तब स्वर्ग का दरवाजा खोलकर परमात्मा ने कहा : "आओ, बैठो, अब मैं तुमको पहचान गया।"

साहस की कमी

मोहन अपनी पाठशाला की पुस्तकों में बिलकुल दिलचस्पी न लेते थे। बड़ी कठिनाई से उन्होंने गणित के चार नियम सीख लिये थे। वे केवल डाँट पड़ने के डर से अपना अभ्यास करते थे। उनकी सबसे बड़ी इच्छा यह थी कि लोगों का उनकी तरफ ध्यान न जाय।

वे लिखते हैं कि वे बड़े डरपोक थे। वे चारों ओर साँपों से डरते थे। यहाँ तक कि वे अपनी छाया से भी डरते थे। रात के अँधेरे में अपने कमरे में जाकर कोई चीज खोजना उनके लिये बिलकुल असंभव था। "बाप रे! यदि खटिया के नीचे कोई छिपा हुआ हो तो?" सोने से पहले वे काँपते-काँपते खटिया के नीचे देख लेते थे।

लेकिन देखने से फायदा क्या? अगर वहाँ कोई चोर छिपा हुआ हो, तो डर के मारे वे एकदम भाग जाते। यह भी मुमकिन था कि अपना प्राण बचा देने के लिये वे कहते—"मेरे पास जो कुछ है, ले जाओ।"

वे भूतों और प्रेतों से भी डरते थे।

रंभा : उनकी आया

उनकी आया रंभा ने उन्हें अनेक अद्भुत कहानियाँ सुनायी थीं। कहानियों के ये काल्पनिक व्यक्ति मोहन को सताने आया करते थे। इससे उनका जीवन बहुत कष्टमय हो गया था। वे समझते थे कि ये भूत-प्रेत उन्हें सताने के लिये चारों ओर एकत्र हो जाया करते हैं।

अंत में रंभा ने उन पर दया की। एक दिन रंभा ने उनसे कहा: "इतनी कायरता तो शर्म की बात है। बड़े

होकर तुम कैसे आदमी बनोगे? सुनो बेटा! जिस समय तुम्हें डर लगे, उस समय तुम सर्वशक्तिमान् राम का नाम ले लिया करो। बाद में तुम्हें तनिक डर न लगेगा।"

'राम! राम!! राम!!!' यह नामोच्चारण करते-करते उनकी रगों में खून का दौरा ठीक ढंग से चलने लगता। इसी प्रकार उन्होंने धीरे-धीरे अपनी कायरता को जीत लिया।

उनकी आया कितनी अच्छी थी! गांधीजी उसे बड़े प्रिय थे। वे उसे बड़ी अच्छी मानते थे। वह हरएक प्रश्न का उत्तर दे सकती थी। उसे बहुत-सी सुन्दर कहानियाँ, कविताऐं, कथाऐं और जड़ी-बूटियाँ याद थीं। वे अक्सर उसे मौके पर याद आ जाया करती थीं। वह बहुधा दृष्टांतों के रूप में बच्चों से बातचीत किया करती थी।

मान लो, वह बच्चों को समझाना चाहती कि केवल अपने ही लिऐ नहीं जीना चाहिऐ; बल्कि सारी दुनिया के लिऐ जीना चाहिऐ, तो वह अपने मस्तिष्क के भंडार में से खोजकर एक सुन्दर नयी लोक-कथा ढूँढ़ निकालती, जो उसने स्वयं कितने ही वर्ष पहले अपने बचपन में किसी बुढ़िया से सुनी होगी।

"सुनो बच्चो!" वह कहती: "एक दिन दो स्त्रियाँ आम खा रही थीं। एक ने उन्हें खाकर उनकी गुठलियों

को पत्थर पर फेंक दिया। दूसरी ज्यादा होशियार थी। आम खाकर ताजी होकर बोली : 'राम ! राम !! ये आम कितने अच्छे हैं ! मैं उनकी गुठलियों को लगा दूँगी।' उसने उन गुठलियों को अपने बगीचे में लगा दिया। वह उन्हें रोज पानी देती थी। कुछ साल बाद उन पेड़ों में सुन्दर आम फलने लगे। इस प्रकार उसके बच्चे व नाती-पोते तथा सभी आने-जानेवाले उसके लगाये हुअे आमों को खाते और उसका नाम भी प्रेमपूर्वक लेते थे।"

सत्य और अहिंसा की पहली झलक

जब मोहन लगभग सात वर्ष के हुअे, तभी उनके पिताजी ने पोरबंदर छोड़ दिया। उन्हें राजकोट में अेक ऊँची नौकरी मिल गयी। उनका परिवार भी उनके साथ वहाँ चला गया और वहीं मोहन की पढ़ाई चलती रही।

मोहन बेहद डरपोक थे। वे अैसा हिसाब बैठाते कि पाठशाला में घंटी बजते ही पहुँचें। पढ़ाई खतम होते ही मास्टर साहब के मुँह से अंतिम शब्द निकलते-न निकलते 'मास्टर साहब, नमस्ते' कहकर वे तेजी से भाग जाते।

क्यों ? क्योंकि वे साथियों से डरते थे। वे उनके साथ बातचीत करने में डरते थे। वे समझते थे कि वे उनकी हँसी उड़ायेंगे। वे हर प्रकार से उनसे बचने की कोशिश करते थे।

लेकिन घर पर मोहन काफी बोलते थे। उनकी छोटी आन्तरिक आवाज भी धीरे-धीरे जाग्रत होने लगी।

छोटे-मोटे कामों को करने के लिअे उनका एक बूढ़ा हरिजन नौकर था। वह बहुत शांत स्वभाव का था। उसका सिर बहुत बड़ा था और उसकी आँखें अक्सर लाल रहा करती थीं। मानो, वह हमेशा रोने में लगा रहता हो। गांधीजी की माँ चाहती थीं कि जहाँ तक हो सके, वह उनसे दूर रहे।

"हमारे धर्म में लिखा हुआ है कि बच्चों को हरिजन का स्पर्श नहीं करना चाहिअे।" उनकी माँ ने अेक दिन कहा।

हमेशा की तरह गांधीजी ने अपनी माँ की बात सुन ली। लेकिन यह बात उनके मन में न बैठ सकी।

"क्यों माँ? मैं दादाभाई का हाथ क्यों न पकड़ूँ? उन्होंने क्या किया है?"

"कुछ नहीं बेटा, उन्होंने कुछ बुरा काम नहीं किया; लेकिन वे हरिजन हैं। ईश्वर ने हमें उनसे दूर रहना सिखाया है।"

"लेकिन क्यों माँ? उन्होंने क्या बुरा काम किया? क्या वे झूठ बोलते हैं?"

"नहीं बेटा।"

"क्या उन्होंने चोरी की थी?"

"बिलकुल नहीं। कतई नहीं। दादाभाई बहुत ईमानदार व्यक्ति हैं।"

"लेकिन फिर अैसा क्यों माँ, बताइये तो सही!"

मोहन अैसे हठी थे!

भले ही मोहन की गिनती होशियार लड़कों में न हो सकती हो, लेकिन उन्हें अपनी सचाई और न्याय-भावना का बड़ा गर्व था। वे बहुत नेक लड़का बनने की कोशिश करते थे। इससे उनकी छोटी आवाज हरिजनों पर किये हुअे अत्याचारों के विरुद्ध उठती थी।

उनकी पाठशाला में कई हरिजन लड़के पढ़ते थे। मोहन ने देखा कि उनके साथी और शिक्षक सब उनसे दूर रहने की कोशिश करते थे, हालाँकि वे बड़े सभ्य, अच्छे, स्वच्छ और ईमानदार थे। उनमें से कुछ विद्यार्थी होशियार भी थे। तब उनसे दूर क्यों रहा जाय?

मोहन को मालूम था कि यह उनकी माँ की इच्छा के विरुद्ध है और यदि उन्हें यह बात मालूम हो, तो उन्हें बड़ा दुःख होगा। लेकिन वे अपने को रोक न सके। वे अेक छोटे हरिजन बच्चे के पास गये। वह उन्हें सबसे प्यारा मालूम पड़ता था। वे उस पर हाथ फेरने लगे। उनका हृदय धक-धक कर रहा था। उन्हें अैसा लगा कि इस प्रकार वे अेक अन्याय का प्रायश्चित्त कर रहे

हों। वे काँप रहे थे, लेकिन फिर भी खुश थे। उन्हें बड़ा सन्तोष था।

हरिश्चन्द्र

हम लोग गांधीजी को 'महात्मा' कहते हैं। कोई उन्हें संत समझते हैं, कोई पैगम्बर। शायद लोग यह भी समझते होंगे कि बचपन में वे विचित्र बालक रहे होंगे, लेकिन ऐसा बिल्कुल नहीं। उन्हें पढ़ाई या साहित्य में कोई खास दिलचस्पी नहीं थी। जब एक बार मास्टर साहब का दिया हुआ काम पूरा हो जाता, तो वे तुरंत अपनी कापी-किताबें बंद कर देते थे और फिर वे पढ़ने का नाम नहीं लेना चाहते थे।

वे अपना बेकार समय नदी के किनारे घूमने में या मंदिर में भिक्षुकों की कहानियाँ सुनने में बिताते थे। बचपन में वे बड़े डरपोक थे। तब वे हर चीज से डरते थे। उनमें और कई बड़ी-बड़ी कमजोरियाँ भी थीं। वे दूसरे बच्चों के साथ खेलना बिल्कुल पसंद नहीं करते थे। उन्हें खेल-कूद और व्यायाम आदि से घृणा थी। वे इतने बेवकूफ थे कि वे खेल-कूद से कोई भी फायदा नहीं मानते थे। बाद को उन्हें पश्चात्ताप करना पड़ा, लेकिन तब समय बीत चुका था।

स्कूल में मोहन को न किताब अच्छी लगती थी, न लेख और न भाषण। लेकिन फिर भी एक दिन उनकी

दृष्टि एक पुस्तक पर पड़ी। पहले उन्होंने उसे उठाया और फिर उसे पढ़ा। सबसे पहले उसी किताब को उन्होंने मन लगाकर पढ़ा।

श्रवणकुमार तथा हरिश्चंद्र की कहानियों का प्रभाव

उस किताब में श्रवणकुमार की कहानी थी। मोहन ने उस किताब को कई बार पढ़ा। वे श्रवणकुमार के भक्त बन गये। अपनी कल्पना में वे उसे अपने अंधे माँ-बाप को कंधे पर उठाकर तीर्थ-यात्रा के लिये ले जाते हुये देखते। उनके कोमल हृदय में प्रेम उमड़ आता। कहानी पढ़ते-पढ़ते जब श्रवणकुमार की मृत्यु का प्रसंग आता, तब वे किताब नीचे डालकर घंटों जमीन पर पड़े-पड़े रोया करते थे।

उसी समय की बात है। नाटक करनेवाले लोग उनके शहर में आ पहुँचे। मोहन के पिताजी ने उन्हें अपने यहाँ बुलाया। वे खूब रंग-बिरंगे कपड़े पहने थे और पीतल के जेवर भी। मोहन ने उन गहनों को बहुत कीमती समझा। उनके बाल लंबे घुँघराले थे। वे बोलते समय अपने हाथ-पाँव खूब हिलाते थे, जिससे मोहन ने उन्हें बड़ा वीर समझा। नाटकवालों ने भी श्रवणकुमार का नाटक दिखलाया।

मोहन ने अपने उस आदर्श बालक को जीवित रूप में देखा, उसकी आवाज सुनी। श्रवणकुमार की मृत्यु के

समय उसके माँ-बाप के आँसुओं को देखकर वे अपने को न सँभाल सके। उनकी आंतरिक आवाज ने कहा : "इस उदाहरण का अनुकरण करना चाहिअे। अवश्य करना चाहिअे। उसने अपने माँ-बाप की कैसी सेवा की ! क्या तुम भी अैसा कर सकोगे ?"

अपने बेटे के लिअे मोहन के पिताजी को एक छोटा-सा बाजा मोल लेना पड़ा। बहुत दिनों तक उनके मकान में श्रवणकुमार की मृत्यु के शोक का गाना गूँजता रहा। मोहन के उस गाने को सुनते-सुनते सारे परिवार के लोगों का जी ऊब गया।

मोहन में सबसे पहले साहित्य की रुचि श्रवण-कुमार की कहानी पढ़ने से पैदा हुई। कुछ दिनों के बाद उनके पिताजी उन्हें नाटक दिखाने के लिअे नाट्यशाला में ले गये। वहाँ एक और महान् पुरुष के प्रति उनके मन में भक्ति पैदा हुई। वे थे सत्यवादी हरिश्चंद्र। वे चाहने लगे कि अगर उन्हें रोज हरिश्चंद्र का नाटक देखने का मौका मिलता, तो अच्छा होता। मन-ही-मन वे कहा करते : "सब लोग हरिश्चंद्र के समान सचाई और ईमानदारी क्यों नहीं बरतते ? तुम स्वयं हरिश्चंद्र जैसे सत्यवादी क्यों नहीं बनते ?"

उनकी यह आंतरिक आवाज दिन-रात उन्हें वीर बनने के लिए बढ़ावा देती थी। ❁ ❁ ❁

कुसंगति का प्रलोभन : २ :

प्यारे बच्चो, तुम जान गये हो कि मोहन हर बात में आदर्श बालक नहीं थे। उन्होंने कुछ अैसी गलतियाँ कीं, जिनसे उनके माँ-बाप को बहुत दुःख हुआ। बड़ी उम्र में भी जब वे उन घटनाओं पर विचार करते, तो शर्म के मारे उनका माथा झुक जाता था। हालाँकि इस बात को कहने में दुःख होता है, फिर भी तुमसे उनकी सारी गलतियों का खुलासा न किया जाय, तो इस कहानी का कोई मूल्य ही नहीं रह जायगा।

जब उनकी उम्र चौदह-पंद्रह साल की थी, उनका शरीर बहुत कमजोर था। उनके लिअे दो कदम दौड़ना भी बहुत कठिन काम था। जहाँ तक कूदने का सवाल था, वे छोटे-से गड्ढे को भी पार नहीं कर सकते थे। उनके सब साथी उन्हें चिढ़ाते थे। वे मोहन को देखते ही उनकी हँसी उड़ाते थे। उन्हें यह अच्छी तरह मालूम था कि उनके प्रति उनके साथियों के कैसे विचार हैं। इससे वे बहुत शक्की भी हो गये थे। वे किसीके साथ दोस्ती नहीं करते थे और आखिरकार,

जब उन्हें एक मित्र चुनना ही पड़ा, तो उन्होंने सबसे मोटे-तगड़े लड़के को अपना मित्र बनाया। तुम्हें मालूम है न कि जो गुण खुद हममें नहीं होते, हम अक्सर उन्हींकी प्रशंसा करते हैं। जो चीज हमारे पास नहीं है, उसीको हम अक्सर चाहते हैं। इसलिअे मोहन ने अेक अैसे लड़के को मित्र बनाया, जिसमें अद्भुत शारीरिक शक्ति थी।

वह लड़का पहले से उनके भाई का मित्र रहा था और चूँकि वह मोहन की कमजोरी से अच्छी तरह परिचित था, इसलिअे वह अक्सर उनके सामने अपनी शारीरिक शक्ति प्रदर्शित करता रहता था, जिसकी वजह से मोहन उसे बहुत मानते थे।

उनकी माँ ने उन्हें इस दोस्ती से रोकने की कोशिश की : "बेटा, ध्यान रखना! वह लड़का तुम्हारा मित्र बनने योग्य नहीं है। वह बहुत ही बदनाम हो चुका है।"

"माँ, आप घबरायें नहीं। मुझे मालूम है, उसमें बहुत अवगुण हैं। मैंने उसकी गलतियाँ सुधारने की दृष्टि से ही उसे अपना मित्र बना रखा है। मैं उसकी गलतियों को सुधारना चाहता हूँ। उसमें कई गुण भी तो हैं।"

मोहन के बड़े भाई ने भी उस मित्रता का विरोध किया : "छोटे भैया, तुम क्या कर रहे हो?" उन्होंने

उनसे कहा : "इस कमबख्त को छोड़ दो, तुम पर उसका बुरा असर पड़ेगा।"

"आप चिंता न करें भाईजी, मैं उसको सुधारूँगा !"

किसीको सुधारने का मोहन के जीवन का यह प्रथम प्रयास था। इसके बाद और भी मित्र बने, पर वे अवगुणों में एक-दूसरे से बढ़कर थे। मोहन को अपने नैतिक बल का इतना अधिक गर्व था; फिर भी वे बड़ी जल्दी उन दुष्ट मित्रों के हाथ के शिकार बन गये।

पहला प्रयोग—सिगरेट

शुरू-शुरू में उन्हें स्वयं इसका कुछ भी पता न लगा। उनके साथ रहने से मोहन के मन में सिगरेट पीने की इच्छा उत्पन्न हुई। वे कहते थे कि एक सिगरेट उँगलियों के बीच में लेकर, उसे चुटकियों से हिला-हिलाकर उसकी राख गिराना और आँखें बंद करके फुक-फुक करके नीले-नीले गोल बादल-से हवा में उड़ाना उन्हें अच्छा लगता था। लेकिन सिगरेट मोल लेने के लिये उन्हें पैसे कहाँ से मिल सकते थे ?

दूसरा प्रयोग—चोरी

उन्होंने अपने भाई के जेवर की चोरी करने का निश्चय किया। इस विचार से उन्हें दुःख तो हुआ, पर और चारा ही क्या था ?

उनके मित्र ने सुझाया कि नौकरों के पैसों की चोरी करो।

"न-न। कभी नहीं। मैं ऐसा कभी न करूँगा।"

"वाह! मैं करूँगा। तुम डर के मारे क्यों काँप रहे हो?"

"लेकिन यदि हम पकड़े गये, तो कितने शर्म की बात होगी!"

"कोई नहीं देखेगा। हम बहुत सुंदर सिगरेट मोल लेकर उन्हें छिपकर पीयेंगे। तुम देखोगे कि कितना अच्छा लगता है! बहुत ही अच्छा!"

तो मोहन चोर बने। पर उन्होंने अपनी आंतरिक आवाज क्यों नहीं मानी?

वे अपने बूढ़े नौकर के बचे हुए पैसों की चोरी करने लगे और उन पैसों को सिगरेट पीने में फूँकने लगे। यद्यपि उन्हें खुद अपने से और सिगरेट पीने से भी घृणा हो गयी थी, तब भी वे पीते रहे। वे यह सहन नहीं कर सकते थे कि उनके मित्र उन्हें कायर समझें।

लेकिन एक दिन आया, जब उन्होंने अपने भीतर ज्ञान की छोटी-सी आवाज सुनी—"शर्म की बात है! बड़े शर्म की बात!" "लेकिन मैं क्या करूँ?"—दूसरी आवाज मानो प्रश्न करती।

फिर यह निराशाजनक विचार आया—"मैं आत्म-हत्या क्यों न कर लूँ ?"

उन्होंने यह सुझाव अपने मित्र के सामने रखा। उसका भी जी ऊब गया था। वह भी आत्महत्या करने के लिये तैयार हो गया। दोनों धतूरे का बीज खोजने जंगल में गये। उन्हें मालूम था कि यह काफी तेज विष है। तब उन्होंने एक मंदिर की शरण ली।

मन्दिर में ये दोनों ईश्वर से प्रार्थना करने लगे। फिर मोहन ने अेक-दो विषैले बीज झट-से मुँह में डाल लिये। लेकिन ये फिर फौरन रोने लगे और परमात्मा का नाम लेने लगे। वे मरने से भी डरते थे न! उस रोज भी डर के सामने उनकी इच्छा-शक्ति हार गयी। उस रोज के बाद उन्होंने कभी सिगरेट नहीं पी।

दुर्भाग्यवश वे अब भी न समझ सके कि उन पर उस मित्र का प्रभाव कितना बुरा पड़ा। उनके मँझले भाई भी उस मित्र के प्रभाव में आ गये थे।

बाद में मोहन को मालूम हुआ कि उनके भाई ने मांस खा लिया था। पहले पहल वे विश्वास न कर सके कि उनका भाई कभी ऐसा काम कर सकता है। और भी बातों में उसकी नकल करने में मोहन को देर न लगी।

मित्र के कहने पर भाई को पचीस रुपये कर्ज

लेने पड़े थे। लेकिन अब प्रश्न यह था कि वह कर्ज कैसे चुकाया जाय? मोहन ने कर्ज चुकाने का उपाय निकाला। किस तरह? एक और भी ज्यादा बड़ी गलती करके।

उनके बड़े भाई सोने का एक मोटा कड़ा पहनते थे, जो उन्हें माँ-बाप से मिला था। अेक रोज वह कड़ा मोहन को अपनी मेज पर पड़ा हुआ मिला, जिसे शायद उनके भाई ने नहाते समय खोल दिया होगा। मोहन ने उसे उठाकर झट उससे अेक कड़ी निकालने की कोशिश की। उनका दिल धक-धक, धक-धक कर रहा था तथा घुटने काँप रहे थे। फिर भी उन्होंने उसे निकाल ही लिया और वे फौरन उस कर्ज को चुकाने दौड़े।

लेकिन यह काम उनकी आंतरिक आवाज बर्दाश्त न कर सकी। उन्हें बहुत अशांति महसूस हुई।

"तुम तो सत्य के पक्के पुजारी थे। तुम चोर कैसे बने? अब तुम अपने माँ-बाप को मुँह कैसे दिखाओगे? तुम रोज शाम को उनका आशीर्वाद कैसे लोगे? शर्म! धिक्कार! बड़े शर्म की बात!!" मोहन उस दुःख को ज्यादा देर तक सह न सके।

हृदय के एक कोने से छोटी-सी आवाज निकलती: "बताओ, मैं क्या करूँ? यह सच्ची बात है, मैं बहुत ही नीचे गिर चुका हूँ। क्या मैं अपने पिताजी को सारी

बातें बताऊँ ? उनसे कुछ भी छिपाकर न रखूँ ? सख्त सजा माँगूँ ? उनके पैरों पड़ूँ ?"

इससे निश्चय ही उनकी अंतरात्मा को शांति मिली। वे एकदम घबरा गये। उन्होंने अपने दुःखी पिताजी की कल्पना की—क्रोधित, अपने सिर को पीटते हुअे तथा चिल्लाते हुअे "अभागे !!"

उनका दिल काँप उठा और सोचने लगे, "क्या करूँ ? भगवन्, मैं क्या करूँ ?"

मोहन अपने पिताजी के दुःख से जितना घबराते थे, उतना उनके गुस्से से नहीं। उन्हें मालूम था कि बेटे के गुनाहों की कहानी से पिताजी को बहुत दुःख होगा। यह भी सम्भव है कि हिंदू-धर्मशास्त्रों के अनुसार वे शायद अपने बेटे की गलती का प्रायश्चित्त करने के लिए खुद कोई व्रत ले लें। इस विचार को मोहन सहन न कर सके। वे चाहते थे कि वे खुद अपने पापों के लिअे प्रायश्चित्त करें।

आखिर उन्होंने यह निश्चय किया कि पिताजी को सब बातें बता देनी चाहिअे। सिसकते हुअे, काँपते हाथों उन्होंने कलम ली और अपने गुनाहों की कहानी लिखने लगे : "पिताजी, अब आपका लड़का आपके स्नेह और विश्वास का पात्र नहीं रहा। आपके बेटे ने चोरी की है। उसने आपके बूढ़े नौकर के संचित पैसों की चोरी की

है। उन पैसों से सिगरेट मोल लेकर छिप-छिपकर पी है। उसने अंग्रेजों की नकल की। आपके लड़के ने अपने सगे भाई की भी चोरी की।

"पिताजी, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे सजा दीजिये। आप मेरी गलती के प्रायश्चित्त-स्वरूप उपवास न करें। पिताजी, मैं आपको वचन देता हूँ, फिर अैसा कभी नहीं करूँगा।"

वे अपने पिताजी के कमरे में गये (उन दिनों उनके पिता बीमार थे)। जब मोहन भीतर पहुँचे, तो उनके पिताजी ने सिर ऊपर उठाया, ताकि वे देख सकें कि अंदर कौन आ रहा है। मोहन का मुँह फीका पड़ गया था। चेहरे पर आँसुओं के निशान थे। वे बीमार की भाँति काँप रहे थे। बरफ की तरह ठंडा हाथ उन्होंने मोहन के जलते हुअे माथे पर रख दिया।

पिताजी के हाथ में अपनी चिट्ठी देकर मोहन अेक छोटी-सी कुर्सी पर उनके सिरहाने बैठ गये। वे चिट्ठी पढ़ने लगे। शर्म के मारे मोहन सोचते रहे कि अगर पृथ्वी फटकर उन्हें निगल जाती, तो कितना अच्छा होता!

सिर झुकाये अपने पिताजी को एक तिरछी नजर से मोहन ने देखा कि पिताजी का चेहरा फक पड़ता जा रहा है। पढ़ते-पढ़ते चिट्ठी पर बड़ी-बड़ी आँसू की बूँदें टपाटप गिरने लगीं। उनके रक्तहीन हाथ काँपने लगे।

"मुझ पर क्रोध के मारे वे बरस पड़ेंगे, फिर क्या होगा ?" मोहन ने सोचा।

पिताजी ने पत्र पढ़ा और फाड़ दिया। फिर वे बिना कुछ कहे चुपचाप लेट गये। उन्होंने केवल ठंडा हाथ मोहन के सिर पर फेर दिया।

क्षमा और सहानुभूति

"पिताजी ! पिताजी !! आप मुझे श्राप तो नहीं दे रहे हैं ? क्या आपने मुझे क्षमा कर दिया ?" मोहन उनके हाथ को अपने हाथ में लिये चुपचाप वहीं बैठे रहे।

रात हो गयी थी। अँधेरे में मोहन के पिताजी दिखाई नहीं दे रहे थे। उनका चेहरा भी नहीं दिखाई दे रहा था। मोहन उनका हाथ पकड़े हुये बैठे थे। उन्हें ऐसा लगा कि उस भूल को स्वीकार करने के बाद उनके पिताजी उनसे पहले से भी अधिक स्नेह करने लगे। वे प्रेम द्वारा फिर मोहन को सही रास्ते पर लाना चाहते थे। मोहन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। उसी दिन से उन्होंने समझा कि क्रोध के बजाय प्रेम में ज्यादा शक्ति है। जीवनभर इस बात को वे कभी नहीं भूले।

कुछ दिनों तक वे बिलकुल शांति से रहे। वे अपनी पढ़ाई करते रहे और अपने बीमार पिताजी की सेवा करते रहे। खाली समय में, जब घर में उनके लिये कोई

जरूरी काम नहीं होता था, वे दूर-दूर तक घूमने जाया करते थे।

मांस का प्रयोग

फिर भी उन्हें अैसा लगता था कि उनके चारों ओर अेक अजीब वातावरण बन रहा है, जो उनकी समझ में न आता था। वे अपने साथियों को एक-दूसरे से 'क्रांति' और 'सुधार' की बातें करते हुअे सुना करते थे।

लेकिन शायद, उस समय भी, अगर उनके मित्र ने इसमें अपना हाथ न डाला होता, तो वे निर्दोष रह जाते। उनके मित्र ने समझा कि मोहन उसकी तरह मोटे और बलवान् बनना चाहते हैं। इस बात से उसने फायदा उठाया।

"क्यों भाई, पता नहीं तुम्हें ? यदि तुम मांस खाते, तो जल्दी ही मेरे जैसे या अपने भाई जैसे तगड़े बन जाते।" उनका मित्र मुसकराया, "तुम ही अेक हो, जो नहीं खाते, हमारे सभी साथी खाते हैं।"

"तुम कैसी बुरी बात कहते हो ? यह तो हमारे धर्म के विरुद्ध है। उन बेचारे जानवरों पर तो प्रेम करना चाहिअे।"

"हाँ-हाँ, यह बात तो ठीक है। लेकिन अगर हम मांस न खायेंगे, तो हमेशा के लिअे कमजोर रहेंगे। अंग्रेजों को देखो। एक गीत भी चला है कि ये तगड़े

अंग्रेज लोग छोटे हिन्दुस्तानियों को नचाते हैं, क्योंकि वे सुअर का मांस खाते हैं। इसीलिये वे बहुत लम्बे होते हैं। हमें अपने पुराने रीति-रिवाजों को सुधारना पड़ेगा, नहीं तो हमारा हिंदुस्तान डूब जायगा।" अपनी तीव्र देश-भक्ति के भावों से भरे मोहन अेकदम कुछ भी निर्णय न कर सके।

"क्या तुम सचमुच मानते हो कि अंग्रेज लोग मांस खाने की वजह से इतने स्वस्थ हैं?"

"अवश्य! बेशक!! अगर सब हिंदू लोग मांस खाते, तो जरूर ही अंग्रेज लोगों को हमारे देश हिंदुस्तान से लौटना पड़ता।"

"मगर ये बेचारी बकरियाँ! उनका क्या कसूर है? उन्होंने हमें कोई नुकसान तो नहीं पहुँचाया। हम उन्हें अपनी खूराक के लिये कैसे मार सकते हैं?"

मोहन का मित्र मुसकराया। "देखो, मेरे पुट्ठों को देखो। देखो, मेरी तंदुरुस्ती कितनी अच्छी है! मैं अेक साँप को पकड़कर उसकी गर्दन मरोड़ सकता हूँ! मैं चोरों से भी नहीं डरता। सुनो भाई, अक्ल से काम लो, तुम्हारी तंदुरुस्ती बहुत अच्छी बन जायगी। फिर तुम किसीसे नहीं डरोगे।"

इस आखिरी दलील से मोहन काफी प्रभावित हुअे। "अच्छा, मैं कोशिश करूँगा। अगर तेरे कहने के अनुसार

में खूब तगड़ा बन जाऊँ, तो शायद मैं अपने देश की रक्षा कर सकूँगा।" लेकिन इस मामले में मोहन अपने माँ-बाप से कुछ कह नहीं सकते थे। इसलिअे उन्होंने इस सुधार का प्रयोग भी छिपकर किया।

सुधारकों की पहली ही बैठक असफल रही। मोहन ने अपनी जिंदगी में पहले कभी भी मांस नहीं देखा था। उन्हें धैर्य देने के लिअे उनके मित्र ने अपने मुँह में मांस भर लिया। खून और लोथड़ों को देखकर मोहन को क्रय-सी होने लगी। उन्हें अैसा लगा, मानो मनुष्य का मांस खा रहे हों। उन्होंने फौरन उसे थूक दिया।

"मैं नहीं खा सकता भाई! मैं इसे पचा न सकूँगा।"

मोहन उस रात आँखें बंद कर चुपचाप सो न सके। बिस्तर पर लेटकर उन्होंने उस दृश्य को भूल जाने की भरसक कोशिश की, लेकिन सब व्यर्थ। ज्यों ही उन्हें थोड़ी झपकी-सी आती, त्यों ही अपने सामने एक काली बकरी को खड़ी देखते।

"तुम हमें क्यों मारना चाहते हो?" वह गंभीर स्वर से पूछती थी: "हम लोगों ने तुम्हें क्या नुकसान पहुँचाया है?"

"चली जा! चली जा!!" वे उससे कहते थे: "मुझे सोने तो दे। अब मैं तेरी जाति को नुकसान नहीं पहुँचाऊँगा।"

वे एकदम घबरा उठते। फिर अपने देश और भविष्य की कल्पना करते हुअे सोने की कोशिश करते। फौरन एक बकरी उनकी बगल में रोने लग जाती—एक काली बकरी अपने सफेद बच्चे को गोद में लिये—बिलकुल अेक माँ की तरह!

उसकी आँखों में कातरता की झलक थी। उसका मुँह खुला था। अँधेरी रात में पीले-पीले दाँत चमक रहे थे।

"आशा है, तुम मेरे बच्चे को मारने का साहस नहीं करोगे—तुम अपने 'सुधार' को छोड़ दोगे।"

रातभर मोहन अैसे-अैसे भयानक सपने देखते रहे। उन्होंने अपने दोस्त से अेक शब्द भी नहीं कहा। फिर भी वह मोहन की अरुचि समझ गया। वह निराश नहीं हुआ।

मोहन को और अच्छी तरह फँसाने के लिअे उसने खाना बनाना अच्छी तरह सीख लिया। उसने मांस को इस तरह बनाना सीख लिया कि उसमें उसकी बू तक न आती थी। धीरे-धीरे करके यह खाना मोहन को अच्छा लगने लगा। लेकिन दोनों के ही पास पैसे न थे। इसलिअे बहुत लम्बे-लम्बे अर्से के बाद मांस खाने का मौका मिलता था। भोजन करने के बाद वे अपने हाथ-पैरों के पुट्ठों को टटोलते थे और अपनी ताकत की परीक्षा लेते थे।

"नहीं, अभी तक मेरे शरीर की शक्ति नहीं बढ़ी।"

"सब्र करो, यह तो हो ही जायगा।" उनका दोस्त धीरज धरने के लिअे कहा करता था। लेकिन हर रोज मोहन का धीरज कम होता गया।

"मांस खाने के लिअे झूठ बोलना, चोर की तरह छिप जाना, कैसी शर्म की बात है।" उनकी छोटी आंतरिक आवाज विद्रोह करती थी: "हिंदुस्तान की रक्षा की बुनियाद झूठ से! अे मोहन, तुझे शर्म नहीं आती?"

सुधारक बनना हो, तो अपने में सुधार करने का साहस होना चाहिअे। लेकिन मोहन इतना बहादुर कहाँ था? और उसे अपने माँ-बाप से इन नये विचारों का जिक्र करने की हिम्मत नहीं थी, इसलिअे उसने मांस खाना छोड़ दिया।

"मैंने निश्चय किया है कि जब मैं स्वावलम्बी बन जाऊँगा, तब मांस खाना शुरू करूँगा। मुझे झूठ बोलना और धोखा देना बुरा लगता है। सुनो भाई, क्षमा करना। मैं इसमें असमर्थ हूँ।"

उनके दोस्त को बड़ा गुस्सा आया। वह चिल्लाया: "क्षमा करूँ! क्षमा करूँ!! तुम मेरे मित्र होने लायक नहीं रहे। मैं पहले से कहता आया हूँ—तुम अपने जीवन को अवश्य बिगाड़ दोगे। तुम बिगड़ जाओगे।"

उस भविष्यवाणी से मोहन को बहुत दुःख हुआ। खैर, उनकी आंतरिक आवाज ने पहले ही विजय प्राप्त कर ली थी। इससे उन्हें बड़ी शांति मिली। बाद में उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया कि मांस खाने की कोई जरूरत नहीं है। जीवन में उन्हें ऐसे सैकड़ों तंदुरुस्त लोग मिले, जिन्होंने कभी मांस को छुआ तक न था। ● ● ●

किशोरावस्था की घटनाओं : ३ :

माता-पिता का विवाह-प्रयत्न

प्यारे बच्चो, हिंदुस्तान में हम सबने अेक बहुत बुरे रिवाज बाल-विवाह के खिलाफ लड़ने का निश्चय किया है।

सारी दुनिया हमारी हँसी उड़ाती है और हमें दोष भी देती है। यह बात बेबुनियाद नहीं है। जल्दी-से-जल्दी हम लोगों को इन लज्जाजनक शादियों का रिवाज तोड़ना है। तुम्हारे द्वारा ही यह रिवाज खतम हो जायगा; क्योंकि तुम नवीन भारत के नागरिक हो, नये हिन्द को बचानेवाले हो।

लेकिन अेक समय था, जब हमारी प्यारी मातृभूमि में नवयुवक सिपाही नहीं थे। उन दिनों बहुत कुरीतियाँ चल गयी थीं। जब मोहन और उनके दूसरे छोटे भाई बहुत ही छोटे थे, उस समय उनके पिताजी काफी बूढ़े हो गये थे। अपनी घटती हुई ताकत का खयाल करके (शायद उन्होंने अैसा सोचा होगा कि अब मेरा थोड़ा-सा जीवन शेष है) उनके पिताजी ने बिना मोहन की उम्र का खयाल किये उनकी शादी करने का निश्चय किया।

उनकी माँ में मना करने की हिम्मत नहीं थी। उनके

पिताजी ने अपने भाई को भी खबर दी। मोहन के काका का भी अेक अैसी उम्र का लड़का था। वे खुश हुअे।

उन्होंने मोहन के पिताजी से कहा : "मेरे मन में अेक विचार आया है। अगर हम दोनों के लड़कों की शादी अेक ही समय हो जाती, तो कैसा होता? मैं भी वृद्ध होता जा रहा हूँ। मैं भी मरने के पूर्व अपने लड़के की शादी देख लेता, तो अच्छा होता।" दोनों भाइयों ने इस बात का निश्चय किया। केवल दुलहिन खोजना बाकी रह गया।

काकाजी ने कहा : "अैसा करने में हम खर्च आपस में बाँट लेंगे। मिलकर हम अेक बड़ा अच्छा उत्सव मना सकेंगे।"

इस चर्चा के थोड़े दिन बाद मोहन ने सोचा कि उनके वहाँ पर कुछ न कुछ हो रहा है। लेकिन वह क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है, उनको बिलकुल पता नहीं था। इस मामले में किसीने उनकी सलाह तक नहीं ली। उनके माँ-बाप अैसे मित्रों से मिलने गये, जिनकी लड़की शादी लायक हो रही थी। फिर अेक दिन उन्होंने लड़कों को सुन्दर नये कपड़े पहना दिये और उन्हें बाहर ले गये। तब उनकी समझ में आया कि उनकी शादी होनेवाली है। उन्हें बहुत खुशी हुई।

अेक नया खेल—विवाह

उन्हें नये-नये कपड़े मिलेंगे—दहेज मिलेगा—उनके घर में बहुत सुन्दर भोजन बनेगा, यह सोचकर वे खुशी से फूले न समाये। गाना-बजाना, नाच-कूद और पकवानों की सुगंध, सुन्दर स्त्रियों का मुसकराते हुअे आना-जाना, चमेली और गुलाबजल की खुशबू। इन सब बातों से ये लड़के खूब खुश हुअे।

उन्होंने एक क्षण के लिअे भी इस बात का खयाल नहीं किया कि उनके जीवन में अेक बड़ा भारी परिवर्तन हो रहा है और वे जीवन में अेक नयी-नयी जिम्मेवारी अपने सिर पर ले रहे हैं। उनके वर्तमान जीवन से यह नया जीवन बहुत कठिन होगा।

मोहन की शादी का दिन निश्चित करने से पहले उनके पिताजी ज्योतिषी से मिलने गये। उन्होंने कहा: "बाबाजी, मेरे लड़के का जन्मपत्र देखिये। मैं यह जानना चाहता हूँ कि मेरे लड़के की जन्म-कुंडली में क्या है?"

दुलहिन के पिताजी और मोहन के चाचा ने भी ज्योतिषी से यह प्रश्न पूछा। रिवाज के अनुसार शादी का निश्चय करने से पहले जन्मपत्र देखना पड़ता है कि हरअेक बात अनुकूल है या नहीं?

ज्योतिषी के जन्म-कुंडली अनुकूल है, अैसा कहने पर विवाह के लिअे शुभ दिन निश्चित कर लिया गया। बच्चों की माताअें, उनकी चाची, मामी, मौसी, फूफी तथा बहनें बहुत दिनों से काम में लगी हुई थीं, ताकि सब कुछ तैयार रहे और अंत में वह दिन आ भी गया।

उनके घर पर सब प्रकार के लोगों का आगमन हुआ। सगे-संबंधी, मित्र, ज्योतिषी, ब्राह्मण वगैरह अपने-अपने नौकरों के साथ आये और उनके साथ में भिखारी और बाजा बजानेवाले भी आ पहुँचे।

मोहन इतने भावुक हो गये कि वह न कुछ देख सके, न कुछ सुन सके। मुश्किल से उन्होंने देखा कि उनकी दुलहिन सामने खड़ी है और अब उनकी बारी आ गयी है, तब वे होश में आये।

सब ब्राह्मणों ने मिलकर उनको वेदी के पास पहुँचा दिया, जहाँ अग्नि जल रही थी। उनकी दुलहिन की आँखों पर घूँघट पड़ा था। सबसे पहले उन्होंने सात बार वेदी की परिक्रमा की। इसके बाद वे अेक-दूसरे के सामने खड़े हुअे।

"अपने पितरों की, अग्निदेव की और परमात्मा की साक्षी देकर मैं तुम्हें स्नेह से पालने की प्रतिज्ञा करता हूँ।" यह वचन काँपते हुअे होठों से निकला। दुलहिन ने भी यह वचन दुहराया। फिर उन्होंने दुबारा मिलकर सात बार वेदी

की परिक्रमा की। फिर आया दर्शन का समय। लोगों ने दोनों बच्चों के ऊपर परदा डाला और उन्होंने जल्दी में अेक-दूसरे का दर्शन किया। अेक क्षण में ब्राह्मण ने पर्दा हटाया और उनको फिर नया व्रत लेना पड़ा। अब मोहन की आवाज साफ और दृढ़ हो गयी थी। अपनी धर्मपत्नी के हाथ पर अपना हाथ रखकर दोनों ने मिलकर कहा : "मेरे हाथ पर तेरा हाथ, मेरे हृदय पर तेरा हृदय और दोनों का हृदय परमात्मा के हृदय पर। स्वस्ति।"

क्रिया पूरी हो गयी थी। अब भोजन का समय आया। सब मेहमानों को, अमीर, गरीब तथा ब्राह्मण और हरिजन को भी खूब भोजन मिला।

मोहन की शादी हो गयी।

दूसरा नया खेल—गृहस्थ-जीवन

इस शादी के कुछ महीनों बाद मोहन के भाई को अपना अध्ययन छोड़ देना पड़ा। गृहस्थी की जिम्मेवारी और पढ़ाई अेक साथ न चल सका। लेकिन मोहन ने अपना अभ्यास नहीं छोड़ा।

छोटे होने के कारण स्वभावतः वे कम समझदार थे। इसलिअे कभी-कभी वे इस छोटी लड़की को काफी सताते थे। बहुधा उन्हें ऐसा लगता था कि उनकी पत्नी की बात सही है, फिर भी वे अपने दिमाग में यह अनु-

मान लगाते थे कि पति के नाते स्त्री की बात को मानना उनकी शान के खिलाफ है। इसलिये वे पत्नी के प्रति अन्याय करते रहते थे तथा अपनी कमजोरी को छिपाने के लिये वे अपने को असभ्य और क्रूर बनाते थे। उनकी आंतरिक आवाज पुकार करती थी, पर वे उसके अनुसार चलते न थे। "मैं पति हूँ! मैं स्वामी हूँ!! मैं मालिक हूँ!!!"

मोहन कैसे नासमझ थे!

विशाल दृष्टिकोण की पहली झलक

उन दिनों उनके पिताजी काफी बीमार थे। दिन प्रतिदिन उनकी हालत बिगड़ती जा रही थी। वे बिस्तर से भी न उठ सकते थे। इसलिये उनके मित्र रोज उनसे मिलने के लिये आया करते थे। हिंदू और मुसलमान दोनों जातियों के मनुष्य घंटों उनके साथ बैठा करते थे।

चूँकि मोहन अपने पिताजी की सेवा में लगे रहते थे, इसलिये वे सबकी चर्चा सुनते थे तथा इससे उन्हें काफी नयी बातें सीखने का अवसर मिलता था। इस प्रकार वे ऐसी कई बातें सीख गये, जिनका उन्हें पहले तनिक भी ज्ञान न था। वे हिंदू-धर्म का सौंदर्य और रहस्य समझने लगे। लेकिन इसके साथ-साथ उनको यह बात भी समझ में आने लगी कि यह परमात्मा के पास

पहुँचने का अेकमात्र रास्ता नहीं है। उस समय से उनके मन में सब धर्मों पर बराबर विश्वास पैदा हुआ।

जब मोहन के पिताजी ने इस बात का खुलासा किया कि क्यों उन्होंने उस दिन मोहन को क्षमा कर दिया था, तब से मोहन को अहिंसा का महत्त्व ज्ञात हुआ। यही अहिंसा हमारे हिंदू-धर्म की आधार-शिला है।

तुम 'अहिंसा' का अर्थ जानते होगे—सब प्राणियों के प्रति प्रेम-भाव ही 'अहिंसा' है। यह कहना कि मैं किसी प्राणी को कष्ट नहीं पहुँचाता हूँ, इसलिअे मैं अहिंसक हूँ, संकुचित दृष्टिकोण का द्योतक है। इस प्रकार तो पेड़ और पत्थर भी अहिंसक माने जा सकते हैं; क्योंकि वे किसीको कुछ भी हानि नहीं पहुँचाते।

दिल प्रेम से भर आना चाहिअे। केवल अपने माँ-बाप और मित्रों के प्रति ही नहीं; लेकिन अपने शत्रुओं के लिअे भी। केवल अपने देशवासियों तक ही हमारा प्रेम सीमित नहीं रहना चाहिअे। सारे मानव-समाज के प्रति प्रेम-भाव हो। सब प्राणी परमात्मा से पैदा हुअे हैं, इसलिअे किसीके प्राण लेने का संकल्प नहीं करना चाहिअे।

धीरे-धीरे ये सब बातें मोहन की समझ में आयीं। हरिजनों के दुःखी जीवन और समाज द्वारा उनके छूने से भी छूत मानना उनके दुःख का कारण बन गया। आंतरिक आवाज मानो उनसे कहती, "इस कलंक को

पिटाने के लिअे तुम कब आगे बढ़ोगे ?" और वह तीव्रता से कहती, "जल्दी करो भाई, जल्दी करो। अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहिअे। कर्तव्य-पालन के लिअे तत्पर हो जाओ।"

पिताजी का देहान्त

अब मोहन के पिताजी का अंतिम समय निकट था। उन लोगों ने सब प्रयत्न किये, पर सफलता न मिली। मोहन की माँ ने सब बच्चों को उनके दर्शन करने बुलाया। अेक अंग्रेज डॉक्टर ने ऑपरेशन करने की सलाह दी, लेकिन वैद्यों ने उसकी बात न मानी। मोहन के पिता भी यही चाहते थे।

इसके बाद हर तरह के चिकित्सक आने लगे। हरअेक के भिन्न-भिन्न विचार और इलाज थे। हरअेक अपनी पसंद की दवाइयाँ बतलाता था तथा अपने से पूर्व किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दिये सुझाव की खिल्ली उड़ाता था। फिर वह भी चार बातें अपनी करके चला जाता था। मोहन का परिवार पहले से भी अधिक दुःखी हो जाता था। गोलियाँ, मरहम, तेल, चूर्ण आदि अधिकाधिक मात्रा में आने लगा और संग्रहालय में बढ़ता गया, परंतु पिताजी की अवस्था ज्यों की त्यों बनी रही। वे दिन प्रतिदिन अशक्त होने लगे और उनका कमरा एक डॉक्टर की दूकान-सा लगने लगा। इस प्रकार अस्वस्थता

की सूचना पाकर मोहन के चाचा भी उनकी सेवा करने आ गये और उन्होंने उस दिन से उनके कमरे को न छोड़ा।

हर रोज मोहन शाम को अपने पिताजी के पाँव की मालिश किया करते थे और उनके लिअे दवाइयाँ तैयार करते थे। जब उनके पिताजी को नींद आ जाती, तो वे दबे पाँव चुपचाप अपने कमरे में चले जाते।

एक रोज रात में नियमानुसार वे पिताजी के पास गये। पिताजी बहुत शांति से पड़े थे और चाचाजी पास बैठे आराम कर रहे थे। मोहन ने किसी विशेष प्रकार की आशंका को मन में स्थान नहीं दिया। लेकिन उनके पिताजी के लिअे मौत का बुलावा आ गया था। वे कुछ कहना चाहते थे, लेकिन कह ही न सके। उन्होंने अपने भाई को संकेत किया कि वे कुछ लिखना चाहते हैं। स्पष्ट शब्दों में उन्होंने लिखा : "अन्तिम क्रिया की तैयारी करो।" फिर उन्होंने अपने आभूषण खोलकर दूर फेंक दिये। अैसा मालूम देता था कि उनकी आँखें परलोक के दृश्य पर लगी हैं और वे कहना चाहते हैं : "अब मैं इन आभूषणों का क्या करूँ ? जहाँ मैं जा रहा हूँ, वहाँ कुछ नहीं चाहिअे।"

अेक वृद्ध नौकर मोहन को जगाने गया, तब तक उनके पिताजी परलोक चल दिये थे।

विलायत-प्रस्थान

: ४ :

भविष्य का चिंतन

अब मोहन ने अपनी पढ़ाई में कुछ अधिक ध्यान देना शुरू किया। उनकी बुद्धि जगने लगी। वे उस मशीन की तरह थे, जो अेक बार चलायी जाने के बाद अपने-आप और ज्यादा जल्दी-जल्दी चलने लग जाती है। उन्हें सिर्फ पहले धक्के की जरूरत थी।

फिर भी उन्हें अपने भविष्य के बारे में कोई चिन्ता न थी। वे जिम्मेवारी को दूसरों पर छोड़ देते थे। वे क्यों फिक्र करें? उनकी कोई निजी अभिलाषा न थी। फिर भी वह समय निकट आ रहा था, जब कुछ व्यवसाय चुनने की जरूरत हो जाती है।

डॉक्टरी? रोगियों को ज्यादा संख्या में मारना, बजाय उन्हें आरोग्य प्रदान करने के? नहीं। यह व्यवसाय उनके पिताजी को भी अच्छा नहीं लगता था। तब सरकारी नौकरी? अध्यापन-कार्य? उन सब कामों में से अेक भी उन्हें पसंद नहीं आया। उनके यहाँ लंबी-लंबी चर्चाअें होती रहीं। शाम को इस विषय की चर्चा चलती कि मोहन का व्यवसाय क्या हो?

सब स्त्रियों की तरह उनकी स्त्री का भी अपना निजी विचार तो था ही; लेकिन उन्होंने उन पर कोई प्रभाव डालने की बिलकुल कोशिश नहीं की। उनकी माँ और उनके बड़े भाई अधिक दृढ़ता से अपना मत प्रकट करते थे।

"अच्छा हो, तुम विश्वविद्यालय में जाकर वकालत सीखो। हमारे शहर में सब लोग मुझे पहचानते हैं और मुझ पर विश्वास करते हैं। बाद को मेरे मित्र तुम्हारे मुवक्किल बन सकेंगे।" बड़े भाई ने कहा।

"और कौन जाने", उनकी माँ कहती कि "अेक दिन तुम अपने पिताजी की जगह ले सको। दीवान बन सको।"

तब मोहन विश्वविद्यालय के लिअे रवाना हुअे।

शाम के समय की इन चर्चाओं से उत्पन्न होनेवाली कल्पनाओं के साथ-साथ उनके नजदीकी रिश्तेदारों ने भी उनका उत्साह बढ़ाया। इसलिअे वे बड़ी आशा लेकर भावनगर को चल पड़े।

लेकिन भाग्य का चक्र कहिये, पहली अवधि के बाद ही वे सब कुछ छोड़कर सिर झुकाये घर को लौट पड़े। उन्होंने निश्चय कर लिया कि इस प्रकार अपने जीवन की बलि न देंगे। मोहन का साहस इस धक्के से टूट गया। लेकिन उनके भाई ने, जिन्होंने उनके पिता

की जगह ले ली थी, ढाढ़स बँधाया। उनका कितना प्रेम था मोहन पर !

"कोई बात नहीं। कोई बात नहीं।" वे कहा करते थे : "देख लिया जायगा। तुम्हें आगे पढ़ाने का जरिया निकल आयगा।"

स्त्री भी उन्हें उत्साहित करने लगी। "निराश नहीं होना चाहिये। सब कुछ ठीक हो जायगा। आखिर भारतभर में भावनगर ही अेकमात्र विश्वविद्यालय तो नहीं है। शायद बंबई या कराची में पढ़ाई अधिक सरल होगी।"

उन्होंने उन्हें आश्वासन देने की इतनी कोशिश की कि अंत में वे खुद अपनी बातों में विश्वास करने लगीं। पर मोहन दुःखी और उदास रहते थे। उनके मन में किसी भी बात की आशा न थी।

विदेश का सुझाव

इसी बीच अेक अतिथि आ पहुँचे। वे अेक वृद्ध ब्राह्मण थे और मोहन के पिता के अच्छे मित्रों में से अेक थे। उन्होंने कुछ दिन मोहन के ही घर में बिताने का निश्चय किया। वे बहुत शिक्षित और सभ्य पुरुष थे। सुधार की हवा उन पर सवार हो गयी थी; इसलिअे वे रूढ़ियों में तनिक भी विश्वास नहीं करते थे।

गांधीजी ने उन्हें अपने कष्ट का कारण बतलाया।

उन्होंने प्रश्न किया : "तुम विलायत क्यों नहीं चले जाते ? मेरा लड़का भी वहाँ गया है। वह तुमसे ज्यादा होशियार नहीं है, लेकिन वह तो पास होकर आया है।"

विलायत ! विलायत को जाना ! पहेली सुलझ गयी। उन्होंने पहले से यह खयाल क्यों नहीं किया ?

अपने भाई को बड़ी अभिलाषा से देखते हुए उन्होंने कहा : "हाँ, मैं तो आनन्द से लंदन जाऊँगा। मुझे अैसा लगता है कि इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि वहाँ पर मुझे अवश्य सफलता मिलेगी।"

गांधीजी ने झुककर उन आदरणीय वृद्ध को चरण छूकर प्रणाम किया और वे आगे कुछ कहनेवाले थे कि उनकी माँ ने उन्हें अपनी गंभीर निगाह से रोक लिया।

"विलायत ! मेरा लड़का अकेले इतनी दूर कैसे जा सकता है ? आप क्या कह रहे हैं जोशीजी ? क्या आपने नहीं सुना कि वहाँ पर कैसी-कैसी बातें होती हैं ?"

भोली-भाली माँ समझती थी कि विलायत सचमुच नरक का प्रतीक है।

थोड़े दिनों के बाद वे ब्राह्मण चले गये।

विचार-मंथन

गांधीजी के बड़े भाई ने भी यही निश्चय किया।

विलायत का नाम सुनकर वे नहीं घबराते थे, लेकिन उनकी माँ इस बात से सहमत न थीं।

"अेक अकेली औरत अैसी जिम्मेवारी कैसे उठा सकती है? चूँकि तुम्हारे पिताजी हमारे बीच नहीं हैं, इसलिअे हमें चाचाजी की सलाह लेनी पड़ेगी। अब वे ही हमारे बुजुर्ग हैं।"

अब क्या था? गांधीजी अपनी माँ को अच्छी तरह पहचानते थे। वे अपने चाचाजी से मिलने गये।

प्रणाम करके उन्होंने अपने चाचाजी से कहा:

"चाचाजी! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि इन-कार न कीजियेगा। मैं जाना चाहता हूँ—मुझे जरूर जाना चाहिअे।"

अेक हाथ में अपनी दाढ़ी पकड़कर चाचाजी सोच में पड़ गये। वे फिर कहने लगे:

"बेटा! मुझे अब इस दुनिया में बहुत थोड़े दिन बिताने हैं। कुछ ही दिनों में मैं हाथ में कमण्डल लेकर गेरुआ कपड़े पहनूँगा और बाल मुँडाकर यात्रा पर जाऊँगा। मैं यह जिम्मेवारी कैसे उठाऊँ?

"मुझे अपना भारत प्रिय है। मुझे अपने धर्म पर श्रद्धा है। हमारे लड़के अंग्रेजों का वेश धारण करके विलायत से लौटते हैं। उन्हें देखकर मुझे दुःख होता है। मैं देखता हूँ कि दिनभर उनके होठों से सिगरेट

छूटती नहीं—मुझे यह देख घृणा होती है। मांस खाने के भी वे आदी हो जाते हैं। वे अपने बुजुर्गों का आदर नहीं करते। मुझे अैसा लगता है कि वे अपनी आत्मा का हनन करते हैं। हिंदू तो वे रहते नहीं, पर अंग्रेज भी नहीं बन पाते। मैं तुमको अैसा नहीं देखना चाहता।"

"लेकिन चाचाजी, आप क्या सोच रहे हैं? मैं तो हिंदू ही रहूँगा! मैं शराब नहीं पीऊँगा, मैं मांस नहीं खाऊँगा। मैं पवित्रता से रहूँगा।"

"अगर तुम मुझको वचन देते हो, तो मैं तुम पर विश्वास कर सकूँगा। ईश्वर तुम्हें आत्मबल दे। तुम अपनी माँ से कह देना कि तुम मेरा आशीर्वाद लेकर विलायत जाओगे।"

लेकिन दुर्भाग्य, जब गांधीजी अपने घर लौटे, तो उन्होंने देखा कि माँ उनके विलायत जाने के बारे में पहले से भी ज्यादा विरोध कर रही हैं। उनकी अनुपस्थिति में उन्होंने अनेक बातें विलायत के बारे में ज्ञात कर ली थीं। लोगों ने उन्हें खराब-से-खराब बातें सुनायी थीं।

"उन्हें हरगिज मत जाने दीजिये। सुनिये तो सही—वह अवश्य भ्रष्ट हो जायगा।"

"अरे क्यों! आप नहीं जानती हैं—हमारे पड़ोसी का लड़का वहाँ से पक्का शराबी बनकर लौटा है!"

"और अमुक का लड़का? वह तो अपने बुजुर्गों की हँसी उड़ाता है। वह मांसाहारी बन गया है।"

माँ की दुविधा और बढ़ गयी। उन्होंने अपने पुत्र को सारा हाल सुनाया।

"पूज्य माताजी, आप अपने लड़के में विश्वास नहीं रखती हैं? मैं झूठ नहीं बोलता। मैं कसम खाता हूँ— मैं बिगड़ूँगा नहीं—मैं जरूर पवित्रता से रहूँगा।"

"मोहन, मेरा विश्वास तो तुझ पर है। लेकिन तू वहाँ अकेला रहेगा—इतनी दूरी पर! अगर तू बीमार पड़ जाय, तो तेरी देखभाल कौन करेगा? अकेले, बिलकुल अकेले; अनजान लोगों के बीच रहेगा। इसका मुझे डर है।"

उन्होंने अपनी माँ को समझाया कि वे इस प्रकार की बातों पर विश्वास न करें। उन्होंने उनको समझाया कि आखिर विलायत अेक सभ्य देश है तथा जो लोग बुरे रास्ते में फँस जाते हैं, वे जान-बूझकर फँस जाते हैं। उन्होंने उनको शांत करने की कोशिश की।

दृढ़ प्रतिज्ञा पर परिवार की अनुमति

अंत में उन्होंने कहा कि "मैं बेचारजि स्वामी से पूछती हूँ।"

बेचारजि स्वामी संत पुरुष थे। उन्होंने दुनिया

की सारी माया-ममता छोड़ दी थी। गांधीजी की माँ ने उन्हें अपने यहाँ बुलाया।

"आप उसे जाने दीजिये। अगर उसने अपना वचन दिया है, तो वह अवश्य उस पर दृढ़ रहेगा। इसमें घबराने की कौन-सी बात है?" गांधीजी की माँ ने उस बूढ़े की बात मान ली।

तब गांधीजी को अेक गंभीर प्रण लेना पड़ा। घुटने टेककर उन्होंने कहा : "मैं परमात्मा का ध्यान कर यह प्रण करता हूँ कि मैं पवित्र ही रहूँगा। मैं मांस नहीं खाऊँगा। न शराब पीऊँगा। मैं अपनी स्त्री और अपने लड़के की याद अपने दिल में पवित्र ढंग से सुरक्षित रखूँगा।"

उनकी माँ ने प्रेम से उन्हें छाती से लगाया और उन्हें उठाकर आशीर्वाद दिया। उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे।

बहुत आनंद और उत्साह से गांधीजी ने जाने की तैयारियाँ कीं। उन्हें जाने में इतनी खुशी थी कि उन्होंने साधारण ढंग से ही अपनी पत्नी और अपने इकलौते बेटे से विदा ली।

बंबई में शंकाअें

बंबई में उनके भाई के मित्रों ने उनके उस समय जाने

का विरोध किया। जून और जुलाई के महीनों में अरब सागर बहुत अशांत रहता है, इसलिये कुछ दिन ठहरना उचित समझा गया। क्योंकि उसी समय अेक जहाज के डूबने की सूचना मिली थी।

गांधीजी के भाई उन्हें पहुँचाने के लिअे बंबई आये थे। अपने मित्रों की सलाह सुनकर वे सोचने लगे कि ये ठीक ही कह रहे हैं।

उन्होंने कहा : "मोहन, इस समय में तुम्हें जाने नहीं दूँगा। मुझे बड़ी चिंता रहेगी। अधिक अच्छा तो यह होगा कि हम यहाँ पर रहकर अच्छे मौसम का इंतजार करें। मैं अपने मित्रों से तुम्हारा परिचय करा दूँगा। जब तक तुम यहाँ पर नहीं जम जाओ, तब तक मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा।"

उन दिनों गांधीजी के भाई ने माँ के बराबर उनकी सेवा की। उन्होंने उसी प्रकार हर चीज का इंतजाम किया, जिस प्रकार अेक महिला अपने बच्चों के लिअे इंतजाम करती है।

गांधीजी उन्हें पहुँचाने स्टेशन तक गये। उनके भाई बिलकुल गद्‌गद हो रहे थे। लेकिन उन्होंने अपनी हालत को छिपाने की कोशिश की।

जब गाड़ी चल रही थी, तब गांधीजी चिल्लाये :

"माताजी को मेरा प्रणाम कह दीजियेगा । उन्हें सांत्वना दीजियेगा । सब ठीक होगा ।"

वे अपना रूमाल हिलाते रहे और धीरे-धीरे रेलगाड़ी दूर जाते-जाते ओझल हो गयी ।

बंबई शहर का पश्चिमी भाग बहुत सुन्दर है । चौड़ी-चौड़ी सड़कें, लोगों का सतत आना-जाना । धनी व्यापारियों की बड़ी-बड़ी कोठियाँ । अंग्रेजी तरीके के बगीचे और बँगले । लेकिन अकेले और बेकार होने से गांधीजी को उन्हें देखने की बिलकुल दिलचस्पी न रही । उन्हें यह सब देखकर कुछ आनन्द नहीं आया । केवल विलायत जाने की धुन उन पर सवार थी ।

बिरादरी का विरोध

उनकी जाति के लोग उनके विलायत जाने के निर्णय से बड़े नाराज थे । जाति के मुखिया ने अेक पंचायत बुलायी और गांधीजी को उसमें हाजिर होने का आदेश दिया । बड़ी चिंता के साथ वे रवाना हुअे । उन्हें मालूम था कि बड़े तूफान का सामना करना है ।

"हमारी जाति के लोग आपका जाना पसंद नहीं करते । हमारे धर्म में विलायत जाना पाप माना गया है ।"

अपराधी की तरह खड़े होकर गांधीजी सेठजी की

बातें सुनते रहे। स्वयं उनकी समझ में नहीं आया कि उनमें उत्तर देने की हिम्मत कहाँ से आयी।

"सेठजी, सुन लीजिये। बुजुर्ग लोग भी सुन लें। मुझे मालूम है कि मेरे पिताजी आपको मित्र मानते थे। इसलिये मैं आपकी सलाह की बहुत कद्र करता हूँ। फिर भी मेरे लिये जाना जरूरी है। माताजी और भाई साहब ने मुझे पहले ही इजाजत दे दी है।"

"लेकिन मैं फिर भी कहता हूँ कि आपको यह नासमझी का निर्णय छोड़ना होगा। आप कौन हैं, जो अपनी जाति-बिरादरी की बातों की परवाह नहीं करते? जितने नौजवान विलायत गये हैं—मैं सबको पहचानता हूँ। वे सब शैतान होकर लौटे।"

सेठजी को गुस्सा आ गया था। उन्हें गांधीजी के साथ बात करना तक अच्छा न लगा। "मैं तो अपनी बात कहूँगा ही, चाहे तुम मानो या न मानो।"

"क्षमा कीजिये सेठजी, मैं नहीं मान सकता।"

"धिक्कार है तुम्हें!" सेठजी चिल्लाये: "धिक्कार है, विद्रोही पुत्र। जो कोई उसे इस अधार्मिक योजना में सहायता देगा, उसे दंड मिलेगा।" गुस्से के मारे सेठजी की आवाज काँप रही थी।

बहुत घबड़ाये हुए मोहन कमरे से निकले। पता

नहीं उनकी माँ क्या कहे ? इस घटना से उन पर क्या असर पड़े और उनके भाई पर भी ?

उन्होंने फौरन अपने भाई को अेक लंबा पत्र लिखा और बड़ी उत्सुकता से वे उत्तर की बाट जोहने लगे। अगर वे उन्हें जाने से मना करें तो ? वे मानो जलती हुई आग पर बैठे थे। आखिर उत्तर मिल ही गया।

"छोटे भाई, यह जरूर बड़े दुःख की घटना घटी। लेकिन तुम चिंता न करो। माँ तुम्हें आशीर्वाद देती हैं। हिम्मत रखो। सब लोग तुम्हें नमस्ते कहते हैं।"

"पूजनीय माँ, प्यारे भाई, आप कितने अच्छे हैं !" गांधीजी ने उन्हें मन ही मन प्रणाम किया।

आखिरी तैयारियाँ

उन दिनों अेक जहाज विलायत जानेवाला था। गांधीजी ने जगह निश्चित कर ली। आवश्यक रुपयों का इंतजाम करने में उन्हें कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उनके भाई ने उनके खर्च के लिअे अेक संबंधी को रुपये दिये थे। लेकिन सेठजी की बातों को सुनकर उसने देने से इनकार कर दिया।

"मैं नहीं दे सकता। सेठजी को मालूम हो जाने पर वे मुझे भी भला-बुरा कहेंगे।"

निराश होकर गांधीजी अपने सब मित्रों से मिलने गये। आखिर में अेक दूर के संबंधी को दया आयी।

"बेटे, ये रुपये ले। और किसीसे कुछ नहीं कहना। परमात्मा तेरे सहायक हों। मैं आशा करता हूँ कि यह तेरी तैयारी के लिअे काफी हो जायगा। ना-ना, धन्यवाद की कोई बात नहीं।"

उनके परिवार के अेक दूसरे मित्र ने उनके सामान और कपड़े के इंतजाम की जिम्मेवारी ले ली। उन्हें अपने सीधे-सादे हिंदुस्तानी कपड़े छोड़ने पड़े।

"तुम ये कपड़े पहनकर किस प्रकार विलायत में घूम सकते हो? लोग तुम्हें पागल समझेंगे। तुम गिरफ्तार हो जाओगे। लोग तुम्हें बेशर्म समझेंगे।"

तब तो लेना पड़ा—भारी माप का जूता, जो पाँवों को दबा देता है! ऊँचा कालर, जिसे गले में पहनकर गरदन नहीं हिलायी जा सकती! एक ऊँची टोपी! प्रिय पगड़ी तुमको प्रणाम!

शाम को कमरे में अपने नये कपड़ों के साथ अकेले पड़कर गांधीजी दुविधा में पड़ गये।

"वाह रे भैया! सफर के लिअे तुम कौन से कपड़े पसंद करोगे?"

बहुत सोच-विचार करके उन्होंने तय किया कि

सबसे अच्छा होगा—काले कपड़े और चमकदार पालिश-वाले जूते।

विलायत में प्रवेश

फिर साउथम्पटन बंदरगाह पर उतरने के लिअे—हालाँकि खूब बादल छाये थे और काफी ठंड पड़ रही थी, गांधीजी ने वे सफेद कपड़े पसंद किये, जो उनके मित्र ने उनके टेनिस खेलने के लिअे तैयार कराये थे।

वे अपनी पोशाक से इतने खुश थे कि यह खयाल तक न कर पाये कि उनकी पोशाक को देखकर होटल-वाले कितने आश्चर्यचकित हैं।

उस रोज शाम को उनके परिवार के अेक मित्र उनसे मिलने आये थे। तब गांधीजी ने समझा कि वे सब उनके कपड़ों की हँसी उड़ा रहे थे।

जब तक वे बातचीत करते रहे, गांधीजी ने देखा कि उनकी ऊँची टोपी ज्यों की त्यों कुर्सी पर रखी हुई है। उन्होंने उसे ठीक करना चाहा। वह बहुत चमक रही थी। उन्होंने उस पर हाथ फेरा, लेकिन उलटा फेरा। टोपी खराब हो गयी। चमक समाप्त। उनको बड़ी शर्म आयी। उनके साथी ने अेक शब्द भी नहीं कहा। लेकिन गांधीजी ने समझा कि वह दया से मुस्करा रहे हैं।

उन दिनों पहले-पहले उन्हें बहुत कष्ट सहना

पड़ा। वे विलायत के रस्म-रिवाजों से बिलकुल अपरिचित थे। उन्हें इनके बारे में सदा सावधान रहना पड़ता था। वे जितनी अधिक कोशिश गलतियों से बचने की करते, उतनी ही वे अधिक होतीं।

शाम को, अकेले कमरे में, जब दिन के अनंत झगड़े-फसाद समाप्त हो जाते, तब वे रोने लग जाते।

"अे मेरे देश! अे मेरी माँ! अे मेरे मित्रो! मैंने तुम्हें क्यों छोड़ा?"

फिर अपनी आंतरिक आवाज पर उन्हें काफी गुस्सा आता था, जो उन्हें होशियार करती रहती थी—

"बस! काफी पछताना हो गया। क्या तुम सिसकने के लिअे और निराश होने के लिअे यहाँ आये हुअे हो? मुझे लगता है कि तुम्हें कुछ दूसरा काम भी तो करना है। विश्वविद्यालय में जाओ, कुछ नयी बातें सीखो। अपना समय और शक्ति इस प्रकार निरुद्देश्य नहीं खर्च करना चाहिअे।"

तब शर्माते-शर्माते, वे अपने दिल को पक्का करके कुछ नये निश्चय करते। ● ● ●

विलायती नकल

हाय ! लंदन में ये शुरुआत के दिन कितनी कठि-नाई से बीते—और कुछ बातों में गांधीजी कैसे मूर्ख बने। उन्हें अैसा लगता था कि वे अेक बहुत बुरा स्वप्न देख रहे हैं। हरअेक बात विचित्र लगती थी। वे उस विशाल शहर में बिलकुल अकेले, बहुत दुःखी होकर घूमते थे।

ये लंबे लाल मुखवाले, हँसमुख लोग, अक्सर जल्दी में, अक्सर काम में व्यस्त, क्या दरअसल ये हमारे भाई ही हैं ? अैसा वे सोचते।

विदेशी जूते से उनके पैरों में तकलीफ होती थी। उन्हें अपनी चप्पल की बहुत याद आती थी। ऊँचे कालर को पहनकर उनका गला घुटता था। घंटों शीशे के सामने खड़े होकर वे अपने को देखते रहते थे।

"क्या यह मैं हूँ, यह काले कपड़े पहने हुअे—कार्टून !"

उन दिनों अगर लंदन उन्हें पसंद नहीं आता था, तो शायद उन तंग जूतों की वजह से ही। जब लँगड़े होने का डर लगा है, तो शहर किस प्रकार सुन्दर मालूम हो ?

इसके अतिरिक्त उनके सब प्रयत्न इस बात के लिये थे कि वे हँसी के पात्र न बनें। उनका न अपने पर विश्वास था, न दूसरों पर। धीरे-धीरे कब और कैसे, इसका ज्ञान न होते हुए भी वे उस जीवन के आदी बन गये। फिर उन्हें अपने साथियों की नकल करने का शौक लगा। उनके रहन-सहन का ढंग बदल गया। उन्होंने भी 'साहब' बनना चाहा।

वे जब पहली बार नृत्य सीखने गये, तो उनकी सूरत देखने लायक थी। कैसी मुसीबत! वे दो कदम भी ठीक ताल पर न नाच सके। उनके कान राग और ताल को पकड़ते थे, परंतु पैर न मिल पाते थे। आखिर उस कमरे में जितने लोग थे, वे सब उनसे डरने लगे। क्योंकि उनके नाचते समय अन्य लोगों को खूब धक्के लगते थे। जितना ज्यादा वे अपने पासवालों से दूर रहने की कोशिश करते थे, उतने ही ज्यादा उनके पैर उनकी ओर चले जाते। वे इस बात का सतत प्रयत्न करते थे कि उनके पैर न दबायें, लेकिन कोई सफलता नहीं मिली। तीसरी फेरी में वे जरूर उनके छोटे-से रेशम के जूते अपने बड़े भारी जूतों से दबा देते थे। बिलकुल बेबसी थी। पर लगता ऐसा था, मानो वे जान-बूझकर करते हों।

नृत्य के साथ उन्होंने वायलिन (बाजा) बजाना

भी सीखना शुरू कर दिया। उन्होंने भाषा और भाषण के लिअे अेक ट्यूटर रखा था।

विश्वविद्यालय में उन्होंने देखा कि साथी लोग उनकी हँसी उड़ाते हैं। अब वे बंबई में बने भद्दे कपड़े कैसे पहन सकते थे? कुछ दिनों बाद वे कक्षा में अैसी पोशाक पहनकर गये, जिसकी कीमत बंबई में बनी पोशाक से कई गुना ज्यादा थी।

प्रमुख अवसरों पर पहनने के लिअे उन्होंने अेक ऊँची टोपी ले ली। अपने वास्कट में उन्होंने अेक भारी सोने की जंजीर लगायी। उन्होंने अपने भाई को लिखा था: "मैं आपसे अेक प्रार्थना करता हूँ। अेक बढ़िया सोने की जंजीर मेरे लिअे भेज देना। मेरे सब साथी अैसी जंजीर पहनते हैं, सिर्फ मेरे पास ही वैसी जंजीर नहीं है।" उन्होंने जंजीर भेज दी।

उनके बालों का अलग ही किस्सा है। वे घुँघराले होने के कारण फैशन की माँग के अनुसार दबते न थे। इससे उन्हें बड़ा दुःख होता था। वे उनमें खूब तेल डालते और उन्हें दबाते रहते थे। अंत में उन्होंने उन्हें दबाने की आदत को ही अपना लिया।

गांधीजी, जिन्होंने कभी अपने कपड़ों की चिंता न की थी, अब शीशे के सामने खड़े होकर बहुत समय

लगाते थे। वे कभी अपनी 'टाई' बनाते, कभी बाल सँवारते और कभी अपने नये कपड़ों को शीशे में देखते।

संकोच से भूखे रहने की नौबत

गांधीजी बचपन से ही कमजोर थे। अब दूसरी झंझटों के साथ ही उनकी खुराक का भी प्रश्न उठा।

जिस परिवार में वे रहते थे, वे लोग शाकाहारी भोजन बनाना नहीं जानते थे। गांधीजी को मांस खाने का विचार तक कभी मन में नहीं आया। उन्होंने अपनी माँ को वचन दे रखा था। वे अपने वचन को कैसे तोड़ सकते थे?

फिर क्या करते?

वे लोग जलपान और भोजन के लिये उन्हें थोड़ी हरी भाजी और कुछ मिठाई (केक) देते थे। यह पूरा नहीं होता था, इसलिये उन्हें सदा भूख सताती रहती थी।

उन्हें दो-तीन डबलरोटी के टुकड़ों से ज्यादा माँगने का साहस भी न होता था। ये टुकड़े भी अक्सर बहुत छोटे-छोटे होते थे। उन्हें ऐसा लगता कि ज्यादा माँगना 'असभ्यता' होगी।

जिस समय उनके पेट में भूख लगती, उस समय वे

बड़े साहस से निश्चय करते थे कि "आज मैं अवश्य पाँच टुकड़े माँगूँगा। आज मैं बिलकुल नहीं शर्माऊँगा।"

"गांधी साहब—काफी हो गया ?"

"हाँ, बहन, धन्यवाद ! अभी भूख नहीं लगी।"

वे कैसा झूठ बोलते थे ! उधर पेट में भूख के मारे चूहे कूदते थे। वे अपने को समझाते रहते थे—"तुम मुझे धोखा न दो। अब चुप रहो। कुछ सब्र करो। भाई, कल तुम देखना—कल !"

लेकिन कल का भी हाल वही रहता।

अगर यही मामला बहुत दिनों तक चलता रहता, तो शायद अेक दिन गांधी साहब उस सुन्दर कमरे में भूख से मरे मिलते, जहाँ ऊँचे स्तर के जीवन के लिअे सभी आवश्यक साधन उपलब्ध थे !

भूखों मरने से रक्षा

लेकिन उन पर ईश्वर की कृपा हुई। अेक दिन घूमते-घूमते उन्हें अेक शाकाहारी होटल मिला। वे बहुत प्रसन्न हुअे। अगर किसीने अेक सारा राज्य उन्हें भेंट में दिया होता, तो भी वे इतने प्रसन्न न होते। अंत में वे पेट भरकर सादा खाना खा सके।

उन्होंने अपने मन में स्वीकार किया कि अब तक वे शाकाहारी रहे, तो इसलिअे कि उन्होंने अपनी माँ को वचन

दिया था। बाद को वे मान गये कि उनके मन में अेक विशेष इच्छा छिपी हुई थी कि यदि सब भारतीय लोग अंग्रेजों की तरह मांस खाने लग जायँ, तो कितना अच्छा हो!

होटल से जाने के पहले उन्होंने शाकाहारी रसोई के बारे में कुछ पर्चे और किताबें खरीदीं। इसके बाद वे अपने लिअे सादा, किन्तु स्वादिष्ट भोजन बना सके।

जैसे ही उनका भोजन का प्रबंध ठीक हो गया, वैसे ही 'सभ्य' बनने का उत्साह भी समाप्त हो गया। वे पूरी तरह होश में आ गये।

"तुम फैशन की गुड़िया बनने लंदन आये हो या विद्या सीखने?" उनकी आंतरिक आवाज उन्हें फिर समझाने लगी।

"तुम अपने भाई के भेजे हुअे रुपये स्वीकार करते हो, जो वे इतने कष्ट से कमाते हैं तथा तुम उन्हें इस प्रकार व्यर्थ बर्बाद कर देते हो। तुम्हारे पास इसका क्या उत्तर है?"

"कोई बात नहीं" छोटी आवाज कहती : "कोई बात नहीं। तुम कृपा करके चुप रहो।"

"तुमने किसलिअे अपने परिवार को, अपनी मातृ-भूमि को, सब प्यारी वस्तुओं को छोड़ दिया है? तुमने क्यों अपनी जात-बिरादरी की बात को नहीं माना?"

"हाँ-हाँ, तुम सही कहते हो ?"

"शर्म ! शर्म की बात ! तू शीघ्र ही अपने जीवन के ढाँचे को बदल, अपना स्वाभिमान जगा। तेरी मातृभूमि को तेरी आवश्यकता है। तुझे मालूम नहीं है कि तू शिक्षा प्राप्त करने के लिअे विलायत में आया है—अपने को भविष्य के संघर्ष के लिअे तैयार करने के लिअे। मोहन, तू क्या कर रहा है ? क्या कर रहा है ?"

पथ-परिवर्तन

जो बहन गांधीजी को वायलिन सिखलाती थी, वह बहुत अच्छी और समझदार थी। गांधीजी भी उसे होशियार समझते थे और उसकी व्यावहारिक बुद्धि की तारीफ करते थे। अेक दिन वे अपनी शिक्षिका से मिलने गये और उन्होंने उससे कहा :

"मैं विनती करता हूँ—आप मुझे मदद दीजिये। मैं नाच वगैरह सीखने में अपना समय बर्बाद कर रहा हूँ। मैं अपने साथियों के फैशन पर ईर्ष्या करता हूँ। मैं उनकी नकल करना चाहता हूँ। अच्छे-अच्छे फैशन-वाले कपड़े पहनना चाहता हूँ। मैं भटक रहा हूँ। इससे मेरी पढ़ाई में नुकसान हो रहा है। आप मेरी मदद कीजिये।"

उस बहन ने उनकी बात समझकर उनका सही मार्ग-दर्शन किया। उसी रोज से वे सही माने में विद्यार्थी बने।

हाँ बच्चो, देखो तो! वहाँ शुरू-शुरू में मोहन ने कोई बहुत अच्छा काम नहीं किया। उन्होंने अपनी शक्ति और समय को बरबाद किया। अपने भाई द्वारा भेजे रुपयों को बुरी तरह खर्च किया। इतनी बात अवश्य है कि यह सिलसिला केवल तीन माह तक ही चला।

वायलिन की शिक्षिका के यहाँ से निकलकर गांधीजी ने फौरन विश्वविद्यालय के निकट अेक सस्ता कमरा खोजा। वह नया कमरा छोटा तो था, लेकिन अच्छा था। वह उन्हें बहुत पसंद आया। उसमें चूल्हा भी था। वे अपने लिअे सुबह को दलिया बना सकते थे तथा शाम को कोको। वे होटलों में व्यर्थ बैठकर समय बरबाद करना नहीं चाहते थे।

विशाल दृष्टिकोण और भक्ति की बुनियाद

अब अेक नया जीवन शुरू हो गया था। इसने उनका आध्यात्मिक बल बढ़ गया था। उन्होंने अच्छी तरह पढ़ना शुरू किया। जिस समय उन्हें अदालत से छुट्टी मिलती, वे धार्मिक अवतारों के जीवन और उपदेशों का अध्ययन करते थे। जैसे राम, कृष्ण, ईसा, बुद्ध, मुहम्मद इत्यादि।

वे धार्मिक पुस्तकें अधिक संख्या में पढ़ने लगे।

"जो आदमी अपनी इन्द्रियों का दास हो जाता है, उसे बहुत कष्ट झेलने पड़ते हैं। उस कष्ट से अेक उत्तेजना-सी पैदा होती है। उससे फिर क्रोध का जन्म होता है; क्रोध से पागलपन। पागलपन स्मरण-शक्ति का नाश कर देता है। स्मरण-शक्ति के नाश हो जाने से बुद्धि का नाश हो जाता है। जब बुद्धि नष्ट हो गयी, तो सब कुछ गया समझो।" अैसा गीता में उन्होंने पढ़ा।

ओह! हमारी गीता कितनी आश्चर्यजनक पुस्तक है। गांधीजी ने उससे अद्भुत और दिव्य प्रेरणा पायी। इसी प्रकार उन्होंने बाइबिल भी बड़ी श्रद्धा से पढ़ी। ईसामसीह के शब्द सीधे उनके हृदय को स्पर्श करते थे। उन्होंने सबसे ज्यादा 'पहाड़ के उपदेश' को पसंद किया :

"मैं तुमसे कहता हूँ कि जो तुम्हारी बुराई करता है, तुम उसका विरोध न करना। अगर किसीने तुम्हारे दायें गाल पर चपत लगायी, तो बायाँ गाल भी उसके आगे कर दो। कोई तुम्हारा कुर्ता छीने, तो उसे कोट भी दे दो!"

"तुम अपने पड़ोसी पर भी अपने समान ही प्रेम करो।"

ईसा अैश्वर्य और आराम का जीवन नहीं बिताते

थे। उनकी माँ, भाई और पिता उन पर प्रेम करते थे। उनके परिवार में बड़ी शांति थी। लेकिन उन्होंने अपने उपदेशों का प्रचार करने के लिओ अपना घर छोड़ दिया। अपनी माँ के प्यार को छोड़ वे घर से निकल गये।

गौतम ने अपने केशों को काटकर नदी में बहा दिया। सोने के मुकुट को भी नदी को अर्पित कर दिया। सात साल तक वे अेक पेड़ के नीचे बैठे रहे। उन्होंने सात साल तक केवल थोड़े चावलों पर ही जीवन-निर्वाह किया।

उनका शरीर भी अेक पेड़ के तने की तरह सूखकर काँटा हो गया था। हर साल वसंत के दिनों में छोटी चिड़ियाँ गरम देशों से लौटकर उनके कंकाल पर घोंसले बनाती थीं, लेकिन सात साल की घोर तपस्या के बाद गौतम को परम सत्य के दर्शन हुअे। वे 'बुद्ध' बन गये। तब जिस पेड़ के नीचे वे सात साल तक बैठे रहे, उस पर फूल आ गये थे और बुद्ध पर उनकी वर्षा हुई।

बुद्ध तपस्या से उठे और कमंडल उठाकर, गेरुअे कपड़े पहन सारे देश में घूमते-घूमते लोगों को परम सत्य का उपदेश देने लगे।

नदी की धारा उनके मुकुट और केशों को बहाती-बहाती उनकी पत्नी के महल तक ले गयी। उसने मुकुट

और केशों को पहचानकर सारे रहस्य को समझ लिया। अपने केश और सुन्दर वस्त्र त्यागकर वह भी तपस्विनी-सी बन गयी।

बुद्ध के उपदेशों को सुनकर उस समय के कितने ही लोग बौद्ध-भिक्षु बन गये। गौतम बुद्ध की पत्नी भी भिक्षुणी बन गयी थी। पुत्र ने भी पिता का अनुकरण किया। अमीर-गरीब, युवराज और पंडित, जो भी उनके उपदेश सुनते, भिक्षु-धर्म अपना लेते थे।

यही कारण है कि हम हिंदू लोग गेरुआ वस्त्र पहनें हुअे भिक्षुओं को चिढ़ाते नहीं; क्योंकि हमें मालूम रहता है कि इन गेरुआ वस्त्र पहने लोगों के भीतर कभी-कभी ज्ञान छिपा रहता है।

इस प्रकार गांधीजी की आत्मा में चारों तरफ के ज्ञान के प्रवेश के लिअे द्वार खुल गये। सत्य के प्रकाश के सम्मुख उनकी आत्मा का वैसा ही विकास हुआ, जैसे गुलाब सूर्य की किरणों को पाकर।

उसी समय से उन्होंने प्रण कर लिया कि वे ईसा और बुद्ध के उपदेशों का पालन करेंगे और उनके प्रचार में अपना जीवन लगा देंगे।

प्यारे बच्चो! अगर हम अेकता का अनुभव करते हैं, तो इसलिअे कि हमने प्रण किया है कि हम अपने शत्रुओं

के साथ भी सद्व्यवहार करेंगे और बुराई के बदले में भलाई करेंगे ।

विलायती जीवन पर मनन

समय बीतता जा रहा था । परीक्षा निकट आ गयी थी । तीन वर्ष बीत गये । गांधीजी अब इक्कीस साल के युवक थे । लंदन में रहकर उन्होंने कई व्यावहारिक बातें सीख ली थीं । अनेक लोगों का परिचय प्राप्त कर लिया था । इसलिये विलायत उन्हें अच्छा लगने लगा ।

गांधीजी पश्चिमी सभ्यता को समझने लगे । कुछ बातें उनसे छिपी नहीं रह सकीं । अंग्रेज लोग हमसे अधिक साफ, अधिक वीर और अधिक स्वाभिमानी होते हैं । वे उनकी राजनीति को तो नहीं पसंद कर सके, लेकिन उन्होंने उनके व्यक्तिगत गुणों को बहुत पसंद किया ।

वे अपने दिल में सोचते थे, "सब हिंदू लोग अंग्रेजों के बराबर वीर होते और सब हिंदू लोगों को अपनी जाति पर इतना ही स्वाभिमान होता, तो हमारा हिंदुस्तान कभी का उन्नत देश हो जाता । उसने भी संसार के स्वतंत्र राष्ट्रों का भाग अदा किया होता ।"

वे तब स्वप्न में भी अंग्रेजों को निकालने की न सोचते थे । इसके विपरीत उन्हें अंग्रेजी नागरिक होने

का अभिमान था। वे केवल यह चाहते थे कि उनकी जन्मभूमि के लोग अपने देश का ऊँचा स्थान और उपदेश समझें। फिर कौन हमारी हँसी उड़ा सकता है ?

उन्हें अेक मित्र की याद आयी। वे अेक अच्छे कवि थे। हिंदुस्तान में लोग उन्हें बहुत मानते थे। लन्दन में पहुँचते ही वे गांधीजी से मिलने आये। उन्होंने हिंदुस्तानी पोशाक पहनी थी। रास्ते में अंग्रेज बच्चों ने उनका पीछा किया। उनकी हँसी उड़ायी, उन पर पत्थर फेंके।

जिस बहन के घर में गांधीजी रहते थे, उसने उस मित्र को पागल समझा। उसने कहा : "कोई बेवकूफ आपको बुला रहा है।"

बाद को अमेरिका में लोगों ने उस कवि को कैद कर लिया। उन पर यह आरोप लगाया गया कि उनकी पोशाक ठीक नहीं है।

गांधीजी ने समझा कि अंग्रेज लोग पूर्वी देशों के बारे में इतने अज्ञान हैं, तो इसमें दोष हमारा है। हम ऐसे रहना नहीं जानते कि लोग हमें आदर की भावना से देखें। हम अपनी परिस्थिति के अनुसार चलना नहीं जानते।

लंदन में उन्होंने यह भी समझा कि खेल में उनकी अरुचि उनकी अेक महान् त्रुटि थी।

जब वे अपने नवयुवक मित्रों के साथ घूमने जाते थे, तो वे समझते थे कि उनके घूमने का ढंग कितना भद्दा है। वे दूर तक चल सकते थे, बस और कुछ नहीं।

पहाड़ पर चढ़ने में उनकी साँस फूलती थी। उतरने में उनको बहुत कष्ट होता था। कभी-कभी बैठ-बैठकर उतरना पड़ता था। अंग्रेज नवयुवक उनके चारों ओर हिरन की तरह खेलते-कूदते थे। ● ● ●

दुःखद स्वागत

गांधीजी अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण हुअे। अब लंदन में देर तक रुकने का कोई कारण नहीं था। वे फौरन अपना सामान बाँध करके जहाज पर रवाना हुअे। अपनी माँ से फिर मिलने के विचार से वे बहुत प्रसन्न हुअे। बार-बार उन्हें अपनी माँ, पत्नी और बेटे की याद सताती थी। उनका बेटा अब बहुत सुन्दर हो गया होगा। अब वह अपने बाबू के साथ तोतली बोली में बोलेगा। अपने सब छोटे-मोटे सुख-दुःख सुनाता रहेगा। इस तरह की कल्पना करने में गांधीजी को आनंद आता था। बच्चों पर उनका बड़ा प्रेम था।

जब गांधीजी हिंदुस्तान के लिअे रवाना हुअे, तब मौसम खराब हो रहा था। यहाँ आने पर बड़े भाई उन्हें लेने आये। गांधीजी ने उनके चरण स्पर्श कर उन्हें गले लगा लिया। उनके भाई ने उनके मुँह और कंधे पर हाथ फेरा। आनंद से वे गद्गद हो गये। वे अेक शब्द भी न बोल सके। अंत में उन्होंने कहा :

"भाई! छोटे भाई! अंत में तुम फिर हमारे बीच

आ पहुँचे। इतने लम्बे समय के बाद यह हमारे लिये बहुत बड़ा शुभ दिन आया।"

गांधीजी ने कहा: "जी! अब मैं आप लोगों को छोड़कर और कहीं नहीं जाऊँगा। मैं आपकी मदद करूँगा। मैं यह प्रयत्न करूँगा कि आपने मेरी जो सहायता की है, उसका प्रतिदान कर सकूँ।"

"चुप रहो। ऐसी बात क्या करते हो?···आओ। तुम थक गये हो।"

"थके? जरा भी नहीं। कितने सारे प्रश्न पूछने थे—माताजी कैसी हैं? और सब लोग भी? मेरा पुत्र?"

"सब ठीक हैं। तुम चिंता मत करो।" ऐसा कहते उनकी आँखें झुक पड़ीं। मुखड़ा म्लान हो गया था। गांधीजी समझ गये कि कोई दुःखद घटना अवश्य घटी होगी।

"अरे दादा! आपको क्या हो गया?"

उनके भाई ने उन्हें सांत्वना देने की कोशिश की। लेकिन गांधीजी ने उनकी बातें नहीं सुनीं।

"माँ! माँ कैसी हैं? इन तीन सालों में वे कितनी बुढ़िया हो गयी हैं?"

तब उनके भाई के बरबस आँसू गिरने लगे।

तब गांधीजी ने समझा कि कुछ बात अवश्य है।

उनके परिवार में अेक दुःखद घटना घट चुकी थी। लेकिन भाई ने इसकी सूचना उन्हें नहीं दी। कारण यह था कि अकेले वे यह दुःख सह न सकते। गांधीजी का दिल घबराहट से भर गया।

"माँ! मेरी प्यारी माँ! अब तुम्हें मैं कहाँ देख सकूँगा? इतनी जल्दी हमें छोड़कर तुम कहाँ चली गयी हो? बिना तुम्हारे प्रकाश दिये हम आगे कैसे बढ़ सकेंगे?"

वे चाहते थे कि दूसरे लोग उनका दुःख न समझें। उन्होंने शांत बने रहने का भरसक प्रयत्न किया। बाहरी तौर पर वे शान्त थे। लेकिन मन ही मन वे अेक आँधी का अनुभव कर रहे थे।

अंग्रेजियत की ओर

गांधीजी के विलायत जाने के बाद उस झगड़े की वजह से उनकी जाति में दो पक्ष बन गये थे। कुछ उनके पक्ष में थे और कुछ विपक्ष में। उनके लौटने के बाद उस झगड़े को मिटाने के लिअे उनके भाई ने चाहा कि वे प्रायश्चित्त कर लें।

गांधीजी ने उनसे प्रार्थना की: "भाई साहब, आप अैसा न करें। यह सब व्यर्थ होगा। आप मुझे फिर से जाति में वापस लाने के लिअे इतना प्रयत्न क्यों कर रहे हैं? मैं अैसे सब कामों से दूर रहूँगा, जो हमारे बुजुर्गों

को पसंद न हों। धीरे-धीरे वे अपना गुस्सा भूल जायेंगे। आप इस बात को स्वयं देख लेंगे।"

उनके भाई ने जाति-भोज दिया। गांधीजी की मनःस्थिति ज्यों-की-त्यों रही।

सेठजी के श्राप के बाद गांधीजी अपने बहनोई या ससुर के घर पर न जा सके। वे भी उनको कोई वस्तु न दे सके। यहाँ तक कि अेक लोटा पानी भी न दे पाये। उन्हें मालूम था कि वे उन पर बड़ा प्रेम करते थे। इसीलिअे वे उनके पास नहीं गये कि उनकी बातें सुनकर उन्हें दुःख होगा। अपने घर में सब लोग उन्हें बड़ा विद्वान् समझते थे। वे विलायत में विद्या प्राप्त कर आये थे न! वहाँ से कुछ सुधार के विचार और कुछ नये रहन-सहन के विचार वे लाये थे।

उन्होंने बच्चों को व्यायाम करना सिखलाया। उन्हें निर्भय बनाने का प्रयत्न किया। बच्चों के प्रति गांधीजी का बहुत प्रेम था। बच्चे शीघ्र ही उनसे हिलमिल गये।

गांधीजी को प्रसन्न करने के लिअे उनके भाई ने सबसे पहले अपने-आप कुछ सुधार किये। उन्होंने थाली और कटोरी का उपयोग बंद कर दिया। अब चीनी मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग चलने लगा। उनके सनातनी परिवार में यह अेक साहसिक घटना थी। गांधीजी तो दलिये और कोको के गुण गाते रहे। उन्होंने अपने घर के लोगों

को अंग्रजी ढंग का निरामिष भोजन भी बनाना सिखलाना चाहा। उनके डर से सबको कहना पड़ता था कि यह खाना अच्छा है। गांधीजी अब धीरे-धीरे समझने लगे थे कि ये सब सुन्दर प्रयोग अेक कटोरी गुजराती दाल के सामने कुछ नहीं हैं।

पहले-पहल विलायत में उन्हें बूट पहनने में बड़ा कष्ट हुआ और चप्पल की याद आती रही, पर अब बूट पहनने ही में आनंद आता था। इससे भी बड़ी बात यह है कि वे दूसरों से भी यही काम कराना चाहते थे। इससे भी उनकी तृप्ति नहीं हुई। वे विलायती पोशाक का परिचय कराते गये और खुद पहनते रहे।

बच्चो, वे अभी भटक रहे थे! सही मार्ग तो अभी उन्हें मिला ही न था।

घर का खर्च बढ़ता गया। गांधीजी ने निश्चय किया था कि विलायत से लौटकर वे फौरन अपने भाई का भार हलका करने के लिअे काम में लग जायेंगे। उन्हें अकेले ही कितने लोगों के लिअे कमाना पड़ता था।

लेकिन कैसे करते? उनकी जेब में प्रमाणपत्र तो अवश्य था, लेकिन उन्हें वकालत करने का कोई अनुभव न था। उन्हें अेक छोटे हिंदुस्तानी वकील से भी कम अनुभव था और वे चाहते थे कि उन्हें बैरिस्टर की तरह

पैसे मिलें। अैसी हालत में मुवक्किल मिलने की उम्मीद करना सिवा मूर्खता के और क्या था?

फिर भी उन्हें लंदन के अेक प्रसिद्ध प्रोफेसर की बात याद आयी, "तुम विश्वास करो, थोड़ी-सी बुद्धि की सहायता से ईमानदार आदमी अवश्य अपना जीवन-निर्वाह अच्छी तरह से कर सकता है।" इससे उनकी आत्म-निर्भरता बढ़ी।

उनके भाई ने अपने मित्रों की सलाह ली। उन्होंने कहा: "आप अपने भाई को कुछ दिनों के लिअे बंबई भेज दीजिये। वहाँ पर वे भारतीय कानून सीखेंगे। उच्च न्यायालय से उनका संपर्क हो जायगा। फिर वे वापस आकर यहाँ अपनी वकालत स्वयं चला सकेंगे।"

गांधीजी के भाई ने उनसे पूछा: "क्या तुम बंबई जाना चाहते हो?"

वे खुशी-खुशी तैयार हो गये और बंबई चल दिये।

बंबई में

बंबई में गांधीजी ने अेक मकान किराये पर ले लिया और अेक ब्राह्मण को अपने साथ रख लिया। उसका नाम रविशंकर था।

जहाँ तक भोजन बनाने का सवाल था, वह उसमें

कुछ नहीं समझता था। शायद गांधीजी उससे भी अच्छी तरह दाल-भात बनाना जानते होंगे।

रविशंकर खूब गंदा था। लेकिन इसके साथ-साथ वह बड़ा आलसी भी था। उसे देखकर गांधीजी को उन भिक्षुकों की याद आती थी, जो दिनभर पड़े-पड़े धूप सेंकते हैं और भिक्षा लेकर खाते हैं।

रविशंकर कुछ काम नहीं करना चाहता था। वह बर्तन तक मलना नहीं चाहता था।

"उसे मलने में क्या फायदा है? वह फिर गंदा तो हो ही जायगा।"

गांधीजी को समझाने के लिअे वह कहा करता था: "क्या आप नहीं समझते हैं? क्या आपने कभी अनुभव नहीं किया कि गंदी थाली में परोसा हुआ खाना बहुत स्वादिष्ट होता है?"

गांधीजी को बड़ा गुस्सा आया। वे उसके खयाल से तनिक भी सहमत नहीं थे। इसलिअे गांधीजी ने अपने-आप बर्तन मलना शुरू किया। रविशंकर मुस्कराते हुअे बड़े प्रेम की निगाह से उन्हें देखता था।

कभी-कभी गांधीजी को सान्त्वना देने के लिअे वह कहा करता था: "मैं आपकी दया पर निर्भर हूँ। जब मुझे देखकर आपका जी ऊबेगा, तब मैं जाकर किसान का काम करूँगा।"

लेकिन बंबई का जीवन गांधीजी को भारी लगता था। उनका समय व्यर्थ की झंझटों में बर्बाद जाता था। पाँच महीने के फालतू प्रयत्न के बाद वे राजकोट लौटे। वहाँ पर उन्होंने अपनी निजी वकालत शुरू कर दी।

तिरस्कार का सामना

काम काफी अच्छी तरह चलने लगा। उनके भाई के मित्र अपने मुकदमे उनके पास ले आते थे। धीरे-धीरे वे कुछ रुपये भी बचाने लगे।

लेकिन ठीक उन दिनों में अेक अैसी घटना घटी, जिससे वे समझ सके कि अभिमान किस हद तक मनुष्य के हृदय को अंधकार और अन्याय की ओर ले जा सकता है। वह दुःखद घटना यह थी।

पोरबंदर में गांधीजी के भाई अेक अच्छे अधिकारी के पद पर थे। इससे उन्हें काफी संतोष था और जनता भी उनका खूब आदर करती थी। अेक दिन अेक दुष्ट व्यक्ति ने उन पर गलत समाचार देने का आरोप लगाया।

यह मामला अेक राजनैतिक प्रतिनिधि अंग्रेज युवक के पास पहुँचा।

गांधीजी के भाई को यह मालूम था कि वह अंग्रेज अधिकारी उन्हें पसंद नहीं करता है। उन्हें यह भी मालूम

कारी को भी अेक पत्र लिखा : "आपने मेरा अपमान किया है। आपको मुझसे क्षमा माँगनी पड़ेगी। नहीं तो मुझे इस मामले को आगे बढ़ाना पड़ेगा।"

अधिकारी ने उत्तर दिया : "सब गलतियाँ आपकी ओर हैं। आप अपना मुकद्मा पेश कीजिये।"

गांधीजी ने अैसे उत्तर की आशा नहीं की थी। उन्हें बड़ी दुविधा हुई।

ठीक उसी समय अेक प्रसिद्ध वकील वहाँ पर आये हुअे थे।

गांधीजी के भाई ने कहा : "उनसे सलाह लो। वे तुम्हें ठीक सलाह देंगे।"

वकील ने कहा : "कुछ नहीं करना है। हिंदुस्तान में प्रतिदिन अैसी घटनाअें घटती रहती हैं। मेरे खयाल में आप नहीं जानते हैं कि काले लोगों के साथ गोरे अधिकारियों का कैसा बर्ताव होता है।"

उन्होंने और आगे कहा : "यदि आप उस अधिकारी पर मुकद्मा चलायेंगे, तो इससे आपको कोई लाभ न होगा। उलटा आपका दिवाला पिट जायगा। आप अभी बहुत कम अनुभवी हैं।"

उस वकील ने बिल्कुल सही बात कही। गांधीजी को अभी जीवन का अनुभव लेना था।

इस घटना के कारण गांधीजी के मन में कुछ अशान्ति पैदा हो गयी। यदि वे उस अंग्रेज पर दावा न करते, तो वह उन्हें कायर समझता। वे अब अदालतों के षड्यंत्र भी समझने लगे। न्याय मिलने में उनका विश्वास डगमगाने लगा। अब वे अपने व्यवसाय में आगे बढ़ना नहीं चाहते थे।

अचानक अेक घटना ने इस निराशा से उन्हें बचा लिया। अेक दिन उनके भाई को पोरबंदर के अेक बड़े व्यापारी की चिट्ठी मिली। उसने लिखा था कि "क्या आप अपने भाई से दक्षिण अफ्रीका में हमारा कुछ काम स्वीकार करने के लिअे कहेंगे। वहाँ हमारा अेक बड़ा जरूरी मुकदमा चल रहा है। उसके लिअे हमें उनकी जरूरत है। क्या आप उन्हें वहाँ जाने की आज्ञा देंगे?"

यह आकस्मिक प्रस्ताव मिलने से गांधीजी को बड़ी शान्ति मिली।

अपनी पत्नी और अपने बेटे से विदा लेकर वे फिर अेक बार विदेश के लिअे चल पड़े।

सर्वोदय तथा भूदान-साहित्य

	रु० न० पैसे
गीता-प्रवचन	१–२५
शिक्षण-विचार	१–५०
सर्वोदय-विचार और स्वराज्य-शास्त्र	१–००
लोक-नीति	१–२५
कार्यकर्ता-पाथेय	०–५०
साहित्यिकों से	०–५०
भूदान-गंगा (छह खंडों में) प्रत्येक	१–५०
ज्ञानदेव-चिंतनिका	१–००
भगवान् के दरबार में (परिवर्द्धित)	०–२५
व्यापारियों का आवाहन ,,	०–२५
ग्रामदान	०–७५
शांति-सेना	०–५०
गुरुबोध	१–५०
भाषा का प्रश्न	०–२५
साम्य-सूत्र	०–३७
समग्र ग्राम-सेवा की ओर (सजिल्द)	३–५०
शासन-मुक्त समाज की ओर	०–५०
नयी तालीम	०–५०
संपत्तिदान-यज्ञ	०–५०
व्यवहार-शुद्धि	०–३७
गाँव-आन्दोलन क्यों ?	२–५०
स्थायी समाज-व्यवस्था	२–५०
ग्राम-सुधार की अेक योजना	१–७५
सर्वोदय-दर्शन	३–००
अपना राज्य	०–३७

	रु० न० पैसे
अपना गाँव	०–३७
सत्य की खोज	१–५०
,, (सजिल्द)	२–००
माता-पिताओं से	०–३७
बालक सीखता कैसे है ?	०–५०
नक्षत्रों की छाया में	१–५०
चलो, चलें मंगरौठ	०–७५
भूदान-गंगोत्री	२–५०
भूदान-आरोहण	०–५०
श्रम-दान	०–२५
भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों ?	१–५०
ग्रामदान क्यों ?	१–००
सफाई : विज्ञान और कला	०–७५
सुन्दरपुर की पाठशाला	०–७५
गो-सेवा की विचारधारा	०–५०
पावन-प्रसंग	०–५०
सर्वोदय-संयोजन	१–००
गांधी : राजनैतिक अध्ययन	०–५०
ब्याज-बट्टा	०–२५
पूर्व-बुनियादी	०–५०
प्राकृतिक चिकित्सा क्यों ?	०–२५
प्राकृतिक चिकित्सा-विधि	१–५०
बापू के पत्र	१–२५
स्मरणांजलि (जमनालाल बजाज)	१–५०
ग्रामदान : वरदान	०–२५
कुष्ठ-सेवा	१–२५
मेरा जीवन-विकास	०–५०
समता की खोज में	०–३७